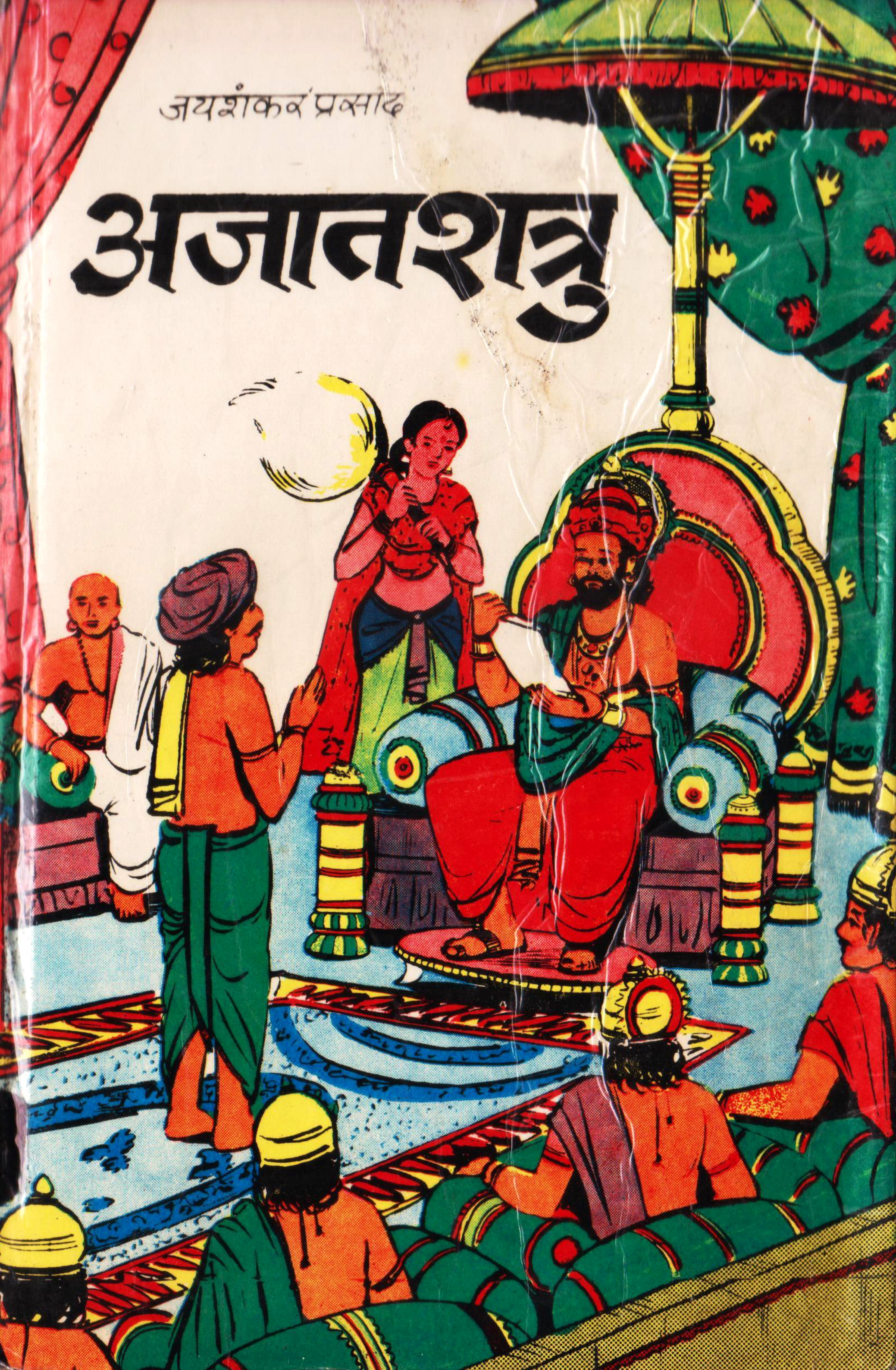
जयशंकर प्रसाद

अजातशत्रु





बाबू जयशंकर प्रसाद

'सुँघनी साहु' के नाम से प्रसिद्ध काशी के प्रतिष्ठित, धनी और उदार घराने में माघ शुक्ल दशमी सं० १९४६ को जन्मे बाबू जयशंकर प्रसाद ने अंग्रेजी शिक्षा आठवें दर्जे तक ही स्कूल में पायी थी; परन्तु घर पर उन्हें अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू और संस्कृत की अच्छी शिक्षा मिली।

पन्द्रह वर्ष की अवस्था—सम्वत् १९६३ में 'भारतेन्दु' में उनकी प्रथम कविता प्रकाशित हुई। इसके बाद उनकी प्रेरणा से निकले 'इन्दु' मासिक में नियमित रूपसे उनकी कविता, कहानी, नाटक और निबन्ध प्रकाशित होते रहे।

हिन्दी में नये युग का सूत्रपात करने वाले बाबू जयशंकर प्रसाद कविता की नवीन धारा के प्रवर्तक और सर्वमान्य श्रेष्ठ कवि तथा हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ नाटककार थे। उन्होंने हिन्दी जगत को जो मणिकांचनमय विचार दिये हैं उनका समुचित मूल्यांकन—आने वाली शताब्दियों का दायित्व होगा।

'चन्द्रगुप्त' इनका सर्वश्रेष्ठ ऐतिहासिक नाटक है, जिसमें 'प्रसाद' जी की नाट्यकला का चरमोत्कर्ष दृष्टिगत होता है।

अजातशत्रु

(ऐतिहासिक नाटक)

जयशंकर 'प्रसाद'

संस्करण

मूल्य : एक सौ साठ रुपये मात्र

मुद्रक : ... 'ओ' लैण्ड

कथा-प्रसंग

इतिहास में घटनाओं की प्रायः पुनरावृत्ति होती देखी जाती है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उसमें कोई नयी घटना होती ही नहीं। किंतु असाधारण नयी घटना भी भविष्यत् में फिर होने की आशा रखती है।

मानव-समाज की कल्पना का भण्डार अक्षय है, क्योंकि वह इच्छा-शक्ति का विकास है। इन कल्पनाओं का, इच्छाओं का मूल-सूत्र बहुत ही सूक्ष्म और अपरिस्फुट होता है। जब वह इच्छा-शक्ति किसी व्यक्ति या जाति में केंद्रीभूत होकर अपना सफल या विकसित रूप धारण करती है, तभी इतिहास की सृष्टि होती है। विश्व में जब तक कल्पना इयत्ता को नहीं प्राप्त होती, तब तक वह रूप-परिवर्तन करती हुई, पुनरावृत्ति करती ही जाती है। समाज की अभिलाषा अनंत स्रोतवाली है। पूर्व कल्पना के पूर्ण होते-होते एक नयी कल्पना उसका विरोध करने लगती है, और पूर्व कल्पना कुछ काल तक ठहर कर, फिर होने के लिए अपना क्षेत्र प्रस्तुत करती है। इधर इतिहास का नवीन अध्याय खुलने लगता है। मानव-समाज के इतिहास का इसी प्रकार संकलन होता है।

भारत का ऐतिहासिक काल गौतम बुद्ध से माना जाता है, क्योंकि उस काल की बौद्ध-कथाओं में वर्णित व्यक्तियों का पुराणों की वंशावली में भी प्रसंग आता है। लोग वहीं से प्रामाणिक इतिहास मानते हैं। पौराणिक-काल के बाद गौतम बुद्ध के व्यक्तित्व ने तत्कालीन सभ्य संसार में एक भारी परिवर्तन किया। इसलिए हम कहेंगे कि भारत के ऐतिहासिक-काल का प्रारंभ धन्य है, जिसने संसार में पशु-कीट-पतंग से लेकर इंद्र तक के साम्यवाद की शंखध्वनि की थी। केवल इसी कारण हमें, अपना अतीव प्राचीन इतिहास रखने पर भी, यहीं से इतिहास-काल का प्रारंभ मानने में भी गर्व होना चाहिये।

भारत-युद्ध के पौराणिक-काल के बाद इंद्रप्रस्थ के पाण्डवों की प्रभुता कम होने पर बहुत दिनों तक कोई सम्राट् नहीं हुआ। भिन्न-भिन्न जातियाँ अपने-अपने प्रदेशों में शासन करती थीं। बौद्धों के प्राचीन ग्रंथों में ऐसे सोलह राष्ट्रों के उल्लेख हैं, प्राय: उनका वर्णन भौगोलिक क्रम के अनुसार न होकर जातीयता के अनुसार है। उनके नाम हैं—अंग, मगध, काशी, कोसल, वृजि, मल्ल, चेदि, वत्स, कुरु, पांचाल, मत्स्य, शूरसेन, अश्वक, अवंति, गांधार और कांबोज।

उस काल में जिन लोगों से बौद्धों का सम्बन्ध हुआ है, इनमें उन्हीं का नाम है। जातक-कथाओं मे शिवि, सौवीर, मद्र, विराट् और उद्यान का भी नाम आया है; किंतु उनकी प्रधानता नहीं है। उस समय जिन छोटी-से-छोटी जातियों, गणों और राष्ट्रों का सम्बन्ध बौद्ध-धर्म से हुआ, उन्हें प्रधानता दी गयी, जैसे 'मल्ल' आदि।

अपनी-अपनी स्वतंत्र कुलीनता और पृथक् आचार रखने वाले इन राष्ट्रों में—कितनों ही में गणतंत्र शासन-प्रणाली भी प्रचलित थी—निसर्गनियमानुसार एकता, राजनीति के कारण नहीं, किंतु एक-से होने वाली धार्मिक क्रांति के कारण थी। वैदिक हिंसापूर्ण यज्ञों और पुरोहितों के एकाधिपत्य से साधारण जनता के हृदय-क्षेत्र में विद्रोह की उत्पत्ति हो रही थी—उसी के फलस्वरूप जैन-बौद्ध धर्मों का प्रादुर्भाव हुआ। चरम अहिंसावादी जैन-धर्म के बाद बौद्ध-धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। वह हिंसामय 'वेद-वाद' और पूर्ण अहिंसा वाली जैन-दीक्षाओं के 'अति-वाद' से बचता हुआ एक मध्यवर्त्ती नया मार्ग था। संभवत: धर्म-चक्र-प्रवर्त्तन के समय गौतम ने इसी से अपने धर्म को 'मध्यमा प्रतिपदा' के नाम से अभिहित किया और इसी धार्मिक-क्रांति ने भारत के भिन्न-भिन्न राष्ट्रों को परस्पर संधि-विग्रह के लिए बाध्य किया।

इंद्रप्रस्थ और अयोध्या के प्रभाव का ह्रास होने पर, इसी धर्म के प्रभाव से पाटलिपुत्र पीछे बहुत दिनों तक भारत की राजधानी बना रहा। उस समय के बौद्ध-ग्रंथों में ऊपर कहे हुए बहुत-से राष्ट्रों में से चार प्रमुख राष्ट्रों का अधिक वर्णन है—कोसल, मगध, अवंति और वत्स। कोसल का पुराना राष्ट्र संभवत: उस काल में सब राष्ट्रों से विशेष मर्यादा रखता था; किंतु वह जर्जर हो रहा था। प्रसेनजित् वहाँ का राजा था। अवंति में

प्रद्योत (पज्जोत) का राज्य था। मालव-राष्ट्र भी उस समय सबल था। मगध, जिसने कौरवों के बाद भारत में महान् साम्राज्य स्थापित किया, शक्तिशाली हो रहा था। बिम्बिसार वहाँ के राजा थे। अजातशत्रु, वैशाली (वृजि) की राजकुमारी से उत्पन्न उन्हीं का पुत्र था। इसका वर्णन भी बौद्धों की प्राचीन कथाओं में बहुत मिलता है। बिम्बिसार की बड़ी रानी कोसला (वासवी) कोसल-नरेश प्रसेनजित् की बहन थी। वत्स-राष्ट्र की राजधानी कौशांबी थी, जिसका खँडहर जिला बाँदा (करुई सब-डिवीजन) में यमुना-किनारे 'कोसम' नाम से प्रसिद्ध है। उदयन इसी कौशाम्बी का राजा था। इसने मगध-राज और अवंति-नरेश की राजकुमारियों से विवाह किया था। भारत के सहस्ररजनी-चरित्र—'कथा सरित्सागर' का नायक इसी का पुत्र नरवाहनदत्त है।

वृहत्कथा (कथा-सरित्सागर) के आदि-आचार्य वररुचि हैं, जो कौशाम्बी में उत्पन्न हुए थे, और जिन्होंने मगध में नंद का मंत्रित्व किया। उदयन के समकालीन अजातशत्रु के बाद उदयाश्व, नंदिवर्द्धन और महानंद नाम के तीन राजा मगध के सिंहासन पर बैठे। शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न, महानंद के पुत्र—महापद्म ने नंद-वंश की नींव डाली। इसके बाद सुमाल्य आदि आठ नंदों ने शासन किया (विष्णुपुराण, चतुर्थ अंश) किसी के मत से महानंद के बाद नवनंदों ने राज्य किया। इस 'नवनंद' के दो अर्थ हुए—नवनंद (नवीन नंद) तथा महापद्म और सुमाल्य आदि नौ नंद। इनका राज्य-काल भी, विष्णुपुराण के अनुसार एक सौ वर्ष होता है। नंद के पहले राजाओं का राज्य-काल भी, पुराण के अनुसार, लगभग एक सौ वर्ष होता है। ढुण्ढि ने मुद्राराक्षस के उपोद्घात के अंतिम नंद का नाम धननंद लिखा है। इसके बाद योगानंद का मंत्री वररुचि हुआ। यदि ऊपर लिखी हुई पुराणों की गणना सही है, तो मानना होगा कि उदयन के पीछे दो सौ वर्ष के बाद वररुचि हुए, क्योंकि पुराणों के अनुसार चार शिशुनाग वंश के और नौ नंद-वंश के राजाओं का राज्य-काल इतना ही होता है। महावंश और जैनों के अनुसार कालाशोक के बाद केवल नवनंद का नाम आता है। कालाशोक पुराणों का महापद्म नंद है। बौद्धमतानुसार इन शिशुनाग तथा नंदों का संपूर्ण राज्यकाल एक सौ वर्ष से कुछ ही अधिक होता है। यदि इसे माना जाय, तो उदयन के १००–१२५ वर्ष पीछे वररुचि का होना प्रमाणित होगा। कथा-सरित्सागर में इसी का नाम 'कात्यायन' भी है—"नाम्नावररुचिः किं च कात्यायन इति श्रुतः"। इन विवरणों से

प्रतीत होता है कि वररुचि उदयन के १२५–२०० वर्ष बाद हुए। विख्यात उदयन की कौशाम्बी वररुचि की जन्मभूमि है।

मूल वृहत्कथा वररुचि ने काणभूति से कही, और काणभूति ने गुणाढ्य से। इससे व्यक्त होता है कि यह कथा वररुचि के मस्तिष्क का आविष्कार है, जो संभवत: उसने संक्षिप्त रूप से संस्कृत में कही थी; क्योंकि उदयन की कथा उसकी जन्म-भूमि में किम्वदंतियों के रूप में प्रचलित रही होगी। उसी मूल उपाख्यान को क्रमश: काणभूति और गुणाढ्य ने प्राकृत और पैशाची भाषाओं में विस्तारपूर्वक लिखा। महाकवि क्षेमेन्द्र ने उसे वृहत्कथा-मंजरी नाम से, संक्षिप्त रूप से संस्कृत में लिखा। फिर, काश्मीर-राज अनंतदेव के राज्य-काल में कथा-सरित्सागर की रचना हुई। इस उपाख्यान को भारतीयों ने बहुत आदर दिया और वत्सराज उदयन कई नाटकों और उपाख्यानों में नायक बनाये गये। स्वप्न-वासवदत्ता, प्रतिज्ञायौगंधरायण और रत्नावली में इन्हीं का वर्णन है। 'हर्षचरित्' में लिखा है—"नागवन विहारशीलं च मायामातंगांगान्निर्गता: महासेन-सैनिका: वत्सपतिन्ययंसिषु:।" मेघदूत में भी—"प्राप्यावंतीनुदयन कथा-कोविदग्राममवृद्धान्" और "प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्रे" इत्यादि हैं। इससे इस कथा की सर्वलोकप्रियता समझी जा सकती है। वररुचि ने इस उपाख्यान-माला को संभवत: ३५० ईसा पूर्व लिखा होगा। सातवाहन नामक आँध्र-नरपति के राजपंडित गुणाढ्य ने इसे वृहत्कथा नाम से ईसा की पहली शताब्दी में लिखा। इस कथा का नायक नरवाहन-दत्त इसी उदयन का पुत्र था।

बौद्धों के यहाँ इसके पिता का नाम 'परंतप' मिलता है—और 'मरन परिदीपितउदेनिवस्तु' के नाम से एक आख्यायिका भी है। उसमें भी (जैसा कि कथा-सरित्सागर में) उसकी माता गरुड़-वंश के पक्षी द्वारा उदयगिरी की गुफाओं में ले जाया जाना और वहाँ एक मुनि-कुमार का उसकी रक्षा और सेवा करना लिखा है। बहुत दिनों तक इसी प्रकार साथ रहते-रहते मुनि से उसका स्नेह हो गया और उसी से वह गर्भवती हुई। उदयगिरि (कलिंग) की गुफा में जन्म होने के कारण लड़के का नाम उदयन पड़ा। मुनि ने उसे हस्ती वश करने को विद्या, और भी कई सिद्धियाँ दीं। एक वीणा भी मिली (कथा-सरित्सागर के अनुसार, वह प्राण बचाने पर नागराज ने दी थी)। वीणा-द्वारा हाथियों और शबरों की बहुत-सी

सेना एकत्र करके उसने कौशाम्बी को हस्तगत किया और अपनी राजधानी बनाया; किंतु बृहत्कथा के आदि आचार्य वररुचि का कौशाम्बी में जन्म होने के कारण उदयन की ओर विशेष पक्षपात-सा दिखाई देता है। अपने आख्यान के नायक को कुलीन बनाने के लिए उसने उदयन को पाण्डव-वंश का लिखा है। उनके अनुसार उदयन गाण्डीवधारी अर्जुन की सातवीं पीढ़ी में उत्पन्न सहस्रानीक का पुत्र था। बौद्धों के मतानुसार 'परन्पत' के क्षेत्रज पुत्र उदयन की कुलीनता नहीं प्रकट होती; परंतु वररुचि ने लिखा है कि इन्द्रप्रस्थ के नष्ट होने पर पाण्डव-वंशियों ने कौशाम्बी को राजधानी बनाया। वररुचि ने यों सहस्रानीक से कौशाम्बी के राजवंश का आरंभ माना है। कहा जाता है, इसी उदयन ने अवंतिका को जीतकर उसका नाम उदयन-पुरी या उज्जयन-पुरी रखा। कथा-सरित्सागर में उदयन के बाद नरवाहन-दत्त का ही वर्णन मिलता है। विदित होता है, एक-दो पीढ़ी चलकर उदयन का वंश मगध की साम्राज्य-लिप्सा और उसकी रण-नीति में अपने स्वतंत्र अस्तित्व को नहीं रख सका।

किंतु विष्णुपुराण की एक प्राचीन प्रति में कुछ नया शोध मिला है और उससे कुछ और नयी बातों का पता चलता है। विष्णुपुराण के चतुर्थ अंक के २१वें अध्याय में लिखा है—"तस्यापि, जन्मेजयश्रुतसेनोप्रसेन-भीमसेनाः पुत्राश्चत्वारो भविष्यंति। १। तस्यापरःशतानीको भविष्यति योऽसौ········ विषयविरक्तचित्तो············निर्वाणमाप्यति। २। शतानीका-दश्वमेघदत्तो भविता। तस्मादप्यधिसीमकृष्णः अधिसीमकृष्णात् नृचक्षुः यो गंगयापहृते हस्तिनापुरे कौशाम्ब्याम निवत्स्यति।"

इसके बाद १७ राजाओं के नाम हैं फिर "ततोप्यपरःशतानीकः तस्माच्च उदयनः उदयनादहीनरः" लिखा है।

इससे दो बातें व्यक्त होती हैं। पहली यह कि शतानीक कौशाम्बी में नहीं गये; किंतु नृचक्षु नामक पाण्डव-वंशी राजा हस्तिनापुर के गंगा में बह जाने पर कौशाम्बी गये। उनसे उनतीसवीं पीढ़ी में उदयन हुए। संभवतः उनके पुत्र अहीनर का ही नाम कथा-सरित्सागर में नरवाहनदत्त लिखा है।

दूसरी यह कि शतानीक इस अध्याय में दोनों स्थानों पर 'अपर-शतानीक' करके लिखा गया है। 'अपरशतानीक' का विषय-विरागी होना—

विरक्त हो जाना लिखा है। संभवतः यह शतानीक उदयन के पहले का कौशाम्बी का राजा है। अथवा बौद्धों की कथा के अनुसार इसकी रानी का क्षत्रज पुत्र उदयन है, किंतु वहाँ इस राजा का नाम परंतप है। जन्मेजय के बाद जो 'अपर-शतानीक' आता है, वह भ्रम-सा प्रतीत होता है, क्योंकि जन्मेजय ने अश्वमेघ यज्ञ किया था; इसलिए जन्मेजय के पुत्र का नाम अश्वमेघदत्त होना कुछ संगत प्रतीत होता है, अतएव कौशाम्बी में इस दूसरे शतानीक को ही वास्तविक स्थिति ज्ञात होती है, जिसकी स्त्री किसी प्रकार (गरुड़ पक्षी-द्वारा) हरी गयी। उस राजा शतानीक के विरागी हो जाने पर उदयगिरि की गुफा में उत्पन्न विजयी और वीर उदयन, अपने बाहुबल से कौशाम्बी का अधिकारी हो गया। इसके बाद कौशाम्बी के सिंहासन पर क्रमशः अहीनस (नरवाहनदत्त), खंडपाणि, नरमित्र और क्षेमक—ये चार राजा बैठे। इसके बाद कौशाम्बी के राजवंश या पाण्डव-वंश का अवसान होता है।

अर्जुन से सातवीं पीढ़ी में उदयन का होना तो किसी प्रकार से ठीक नहीं माना जा सकता, क्योंकि अर्जुन के समकालीन जरासंध के पुत्र सहदेव से लेकर, शिशुनाग-वंश से पहले के जरासंध-वंश के २२ राजा मगध के सिंहासन पर बैठ चुके हैं। उनके बाद १२ शिशुनाग-वंश के बैठे, जिनमें छठे और सातवें राजाओं के समकालीन उदयन थे। तो क्या एक वंश में उतने ही समय में तीस पीढ़ियाँ हो गयीं, जितने में कि दूसरे वंश में केवल सात ही पीढ़ियाँ हुई! यह बात कदापि मानने योग्य न होगी। संभवतः इसी विषमता को देखकर श्रीगणपति शास्त्री ने "अभिमन्योः पंचविंश संतानः" इत्यादि लिखा है। कौशाम्बी में न तो अभी विशेष खोज हुई है, और न शिलालेख इत्यादि ही मिले हैं; इसलिए संभव है, कौशाम्बी के राजवंश का रहस्य अभी पृथ्वी के गर्भ में ही दबा पड़ा हो।

कथा-सरित्सागर में उदयन की दो रानियों के ही नाम मिले हैं वासवदत्ता और पद्मावती; किंतु बौद्धों के प्राचीन ग्रंथों में उसकी तीसरी रानी मागंधी का नाम भी आया है।

वासवदत्ता और पद्मावती में से वासवदत्ता उसकी बड़ी रानी थी जो अवंति के चंडमहासेन की कन्या थी। इसी चंड का नाम प्रद्योत भी था, क्योंकि मेघदूत में "प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्रे" और किसी प्रति में "चाण्डस्यात्र प्रियदुहितरं वत्सराजो विजह्रे" ये दोनों

पाठ मिलते हैं। इधर बौद्धों के लेखों में अवंति के राजा का नाम प्रद्योत मिलता है और कथा-सारित्सागर के एक श्लोक से एक भ्रम और भी उत्पन्न होता है। वह यह है—"ततश्चण्डमहासेनप्रद्योतो पितरो द्वयो: देव्यो……।" तो क्या प्रद्योत पद्मावती के पिता का नाम था ? किंतु कुछ लोग प्रद्योत और चण्डमहासेन को एक ही मानते हैं। यही मत ठीक है, क्योंकि भास ने अवंति के राजा का नाम प्रद्योत ही लिखा है, और वासवदत्ता में उसने यह दिखाया है कि मगध-राजकुमारी पद्मावती को वह अपने लिए चाहता था। जैकोबी ने अपने वासवदत्ता के अनुवाद में अनुमान किया कि यह प्रद्योत चण्डमहासेन का पुत्र था; किंतु जैसा कि प्राचीन राजाओं का देखा जाता है, यह अवश्य अवंति के राजा का मुख्य नाम था। उसका राजकीय नाम चण्डमहासेन था। बौद्धों के लेख से प्रसेनजित् के एक दूसरे नाम 'अग्निदत्त' का भी पता लगता है। बिम्बिसार—'श्रेणिक' और अजातशत्रु—'कुणीक' के नाम से भी विख्यात थे।

उदयन की दूसरी रानी पद्मावती के पिता के नाम में बड़ा मतभेद है। यह तो निर्विवाद है कि वह मगधराज की कन्या थी, क्योंकि कथा-सारित्सागर में भी यही लिखा है; किन्तु बौद्धों ने उसका नाम श्यामावती लिखा है जिस पर मागधी के द्वारा उत्तेजित किये जाने पर, उदयन बहुत नाराज हो गये थे। वे श्यामावती के ऊपर, बौद्ध-धर्म का उपदेश-सुनने के कारण, बहुत क्रुद्ध हुए। यहाँ तक कि उसे जला डालने का भी उपक्रम हुआ था; किन्तु भास की वासवदत्ता में इस रानी के भाई का नाम दर्शक लिखा है। पुराणों में भी अजातशत्रु के बाद दर्शक दर्भक और वंशक—इन कई नामों से अभिहित एक राजा का उल्लेख है; किन्तु महावंश आदि बौद्ध-ग्रंथों में केवल अजातशत्रु के पुत्र उदयाश्व का ही नाम उदायिन, उदयभद्रक के रूपांतर में मिलता है। मेरा अनुमान है कि पद्मावती अजातशत्रु की बहन थी और भास ने संभवत: (कुणीक के स्थान में) अजात के दूसरे नाम दर्शक का ही उल्लेख किया है, जैसा कि उसने चण्डमहासेन के लिए प्रद्योत नाम का प्रयोग किया है।

यदि पद्मावती अजातशत्रु की कन्या हुई, तो इन बातों को भी विचारना होगा कि जिस समय बिम्बिसार मगध में, अपनी वृद्धावस्था में राज्य कर रहा था, उस समय पद्मावती का विवाह हो चुका था। प्रसेनजित् उसका समवयस्क था। वह बिम्बिसार का साला था; कलिंगदत्त ने

प्रसेनजित् को अपनी कन्या देनी चाही थी, किन्तु स्वयं उसकी कन्या कलिंगसेना ने प्रसेन को वृद्ध देखकर उदयन से विवाह करने का निश्चय किया था। कथासरित्सागर के मदनमंचुका लंबक में उल्लेख है—

"श्रावस्तीं प्राप्य पूर्वं च तं प्रसेनजितम् नृपम्!
मृगयानिर्गतं दूराज्जरापांडु ददर्श सा।।
तमुद्यानगता सावैवत्सेशं सख्युरुदोरितम्।"

अर्थात्—पहले श्रावस्ती में पहुँचकर, उद्यान में ठहरकर, उसने सखी के बताए हुए वत्सराज प्रसेनजित् को, शिकार के लिए जाते समय दूर से देखा। वह वृद्धावस्था के कारण पाण्डु-वर्ण हो रहे थे।

इधर बौद्धों ने लिखा है कि "गौतम ने अपना नवाँ चातुर्मास्य कौशाम्बी में, उदयन के राज्य-काल में, व्यतीत किया और ४५ चातुर्मास्य करके उनका निर्वाण हुआ। ऐसा भी कहा जाता है—अजातशत्रु के राज्याभिषेक के नवें या आठवें वर्ष में गौतम का निर्वाण हुआ। इससे प्रतीत होता है कि गौतम के ३५वें-३६वें चातुर्मास्य के समय अजातशत्रु सिंहासन पर बैठा। तब तक वह बिम्बिसार का प्रतिनिधि या युवराज मात्र था; क्योंकि अजात ने अपने पिता को अलग करके, प्रतिनिधि-रूप से, बहुत दिनों तक राज-कार्य किया था, और इसी कारण गौतम ने राजगृह का जाना बन्द कर दिया था। ३५वें चातुर्मास्य में ६ चातुर्मास्यों का समय घटा देने से निश्चय होता है कि अजात के सिंहासन पर बैठने के २६ वर्ष पहले उदयन ने पद्मावती और वासवदत्ता से विवाह कर लिया था और वह एक स्वतन्त्र–शक्तिशाली नरेश था। इन बातों के देखने से यही ठीक जंचता है कि पद्मावती अजातशत्रु की ही बड़ी बहन थी, और पद्मावती को अजातशत्रु से बड़ी मानने के लिए यह विवरण यथेष्ट है। दर्शक का उल्लेख पुराणों में मिलता है, और भास ने भी अपने नाटक में वही नाम लिखा है, किन्तु समय का व्यवधान देखने से—और बौद्धों के यहां उनका नाम न मिलने से यही अनुमान होता है कि प्राय: जैसे एक ही राजा को बौद्ध, जैन और पौराणिक लोग भिन्न-भिन्न नाम से पुकारते हैं, वैसे ही दर्शक, कुणीक और अजातशत्रु ये नाम एक ही व्यक्ति के हैं, जैसे बिम्बिसार के लिए विध्यसेन और श्रेणिक–ये दो नाम और भी मिलते हैं। प्रोफेसर गैगर महावंश के अनुवाद में बड़ी दृढ़ता से अजातशत्रु और उदयाश्व के बीच में दर्शक नाम के किसी राजा के होने का विरोध करते हैं। कथा-सरित्सागर के अनुसार

प्रद्योत ही पद्मावती के पिता का नाम था। इन सब बातों के देखने से यही अनुमान होता है कि पद्मावती बिम्बिसार की बड़ी रानी कोसला (वासवी) के गर्भ से उत्पन्न मगध की राजकुमारी थी।

नवीन उन्नतिशील राष्ट्र मगध—जिसने कौरवों के बाद महान् साम्राज्य भारत में स्थापित किया, इस नाटक की घटना का केन्द्र है। मगध को कोसल का दिया हुआ, राजकुमारी कोसला (वासवी) के दहेज में काशी का प्रांत था, जिसके लिए मगध के राजकुमार अजातशत्रु और प्रसेनजित् से युद्ध हुआ। इस युद्ध का कारण काशी-प्रान्त का आयकर लेने का संघर्ष था। 'हरितमात' 'बड्ढकीसूकर', 'तच्छसूकर' जातक की कथाओं का इसी घटना से सम्बन्ध है।

अजातशत्रु जब अपने पिता के जीवन में ही राज्याधिकार का भोग कर रहा था और जब उसकी विमाता कोसलकुमारी वासवी अजात के के द्वारा एक प्रकार से उपेक्षित-सी हो रही थी, उस समय उसके भ्राता (कोसलनरेश) प्रसेनजित् ने उद्योग किया कि मेरे दिये हुए काशी प्रांत का आय-कर वासवी को ही मिले। निदान, इस प्रश्न को लेकर दो युद्ध हुए। दूसरे युद्ध में अजातशत्रु बंदी हुआ। संभवतः इस बार उदयन ने भी कोसल को सहायता दी थी। फिर भी निकट-सम्बन्धी जानकर समझौता होना अवश्यम्भावी था, अतएव प्रसेनजित् ने मैत्री को चिरस्थायी करने के लिए, और अपनी बात भी रखने के लिए अजातशत्रु से अपनी दुहिता बाजिराकुमारी का ब्याह कर दिया।

अजातशत्रु के हाथ से उसके पिता बिम्बिसार की हत्या होने का उल्लेख भी मिलता है। 'थुस-जातक-कथा' अजातशत्रु के अपने पिता से राज्य छीन लेने के सम्बन्ध में, भविष्यवाणी के रूप में, कही गयी है। परंतु बुद्धघोष ने बिम्बिसार का बहुत दिनों तक अधिकारच्युत होकर बंदी की अवस्था में रहना लिखा है। और, जब अजातशत्रु को पुत्र हुआ, तब उसे 'पैतृक-स्नेह' का मूल्य समझ पड़ा। उस समय वह स्वयं पिता को कारागार से मुक्त करने के लिए गया; किंतु उस समय वहाँ महाराज बिम्बिसार की अंतिम अवस्था थी। इस तरह से पितृहत्या का कलंक भी उस पर आरोपित किया जाता है; किंतु कई विद्वानों के मत से इसमें संदेह है कि अजात ने वास्तव में पिता को बंदी बनाया था, या मार डाला। उस काल की घटनाओं को देखने से प्रतीत होता है कि बिम्बिसार पर

गौतम बुद्ध का अधिक प्रभाव पड़ा था। उसने अपने पुत्र का उद्धत स्वभाव देखकर जो कि गौतम के विरोधी देवदत्त के प्रभाव में विशेष रहता था, स्वयं सिंहासन छोड़ दिया होगा।

इसका कारण भी है। अजातशत्रु की माता चेल्लना (छलना) वैशाली के राजवंश की थी, जो जैन तीर्थंकर महावीर स्वामी की निकट संबंधिनी भी थी। वैशाली की वृजि-जाति (लिच्छवी) अपने गोत्र के महावीर स्वामी का धर्म विशेष रूप से मानती थी। छलना का झुकाव अपने कुल-धर्म की ओर अधिक था। इधर देवदत्त—जिसके बारे में कहा जाता है कि उसने गौतम बुद्ध को मार डालने का एक भारी षड्यंत्र रचा था और किशोर अजात को अपने प्रभाव में लाकर राजशक्ति से भी उसमें सहायता लेना चाहता था—चाहता था कि गौतम से वह संघ में अहिंसा की ऐसी व्याख्या प्रचारित करावे जो कि जैन-धर्म से मिलती हो, और उसके इस उद्देश्य में राजमाता की सहानुभूति का भी मिलना स्वाभाविक ही था।

बौद्ध-मत में बुद्ध ने कृत, दृष्ट और उद्दिष्ट-इन्हीं तीन प्रकार की हिंसाओं का निषेध किया था। यदि भिक्षा में मांस भी मिले, तो वर्जित नहीं था। किंतु देवदत्त यह चाहता था कि 'संघ में यह नियम हो जाय कि कोई भिक्षु मांस खाये ही नहीं।' गौतम ने ऐसी आज्ञा नहीं प्रचारित की। देवदत्त को धर्म के बहाने छलना की सहानुभूति मिली और बड़ी रानी तथा बिम्बिसार के साथ, जो बुद्ध-भक्त थे—शत्रुता की जाने लगी।

इसी गृह-कलह को देखकर बिम्बिसार ने स्वयं सिंहासन त्याग दिया होगा और राजशक्ति के प्रलोभन से अजात को अपने पिता पर संदेह रखने का कारण हुआ होगा, और विशेष नियंत्रण की भी आवश्यकता रही होगी। देवदत्त और अजात के कारण गौतम को कष्ट पहुँचाने का निष्फल प्रयास हुआ। सम्भवतः इसी से अजात की क्रूरताओं का बौद्ध-साहित्य में बड़ा अतिरंजित वर्णन मिलता है।

कोसल-नरेश प्रसेनजित् के—शाक्य-दासी कुमारी के गर्भ से उत्पन्न—कुमार का नाम विरुद्धक था। विरुद्धक की माता का नाम जातकों में वासभखत्तिया मिलता है (उसी का कल्पित नाम शक्तिमती है)। प्रसेनजित् अजात के पास सहायता के लिए राजगृह आया था, किंतु

'भद्दसाल-जातक' में इसका विस्तृत विवरण मिलता है कि विद्रोही विरुद्धक गौतम के कहने पर फिर से अपनी पूर्व मर्यादा पर अपने पिता के द्वारा अधिष्ठित हुआ।

इसने कपिलवस्तु का जनसंहार इसलिए चिढ़कर किया था कि शाक्यों ने धोखा देकर प्रसेनजित् से शाक्य-कुमारी के बदले एक दासी-कुमारी का ब्याह कर दिया था, जिससे दासी-संतान होने के कारण विरुद्धक को अपने पिता के द्वारा अपदस्थ होना पड़ा था। शाक्यों के संहार के कारण बौद्धों ने इसे भी क्रूरता का अवतार अंकित किया है। 'भद्दसाल-कथा' के सम्बन्ध में जातक में कोसल-सेनापति बंधुल और उसकी स्त्री मल्लिका का विशद वर्णन है। इस बंधुल के पराक्रम से भीत होकर कोसल-नरेश ने उसकी हत्या करा डाली थी और इसका बदला लेने के लिए उसके भागिनेय दीर्घकारायण ने प्रसेनजित् से राज्यचिन्ह लेकर क्रूर विरुद्धक को कोसल के सिंहासन पर अभिषिक्त किया।

प्रसेन और विरुद्धक-सम्बंधिनी घटना का विवरण 'अवदान-कल्पलता' में भी मिलता है। बिम्बिसार और प्रसेन दोनों के पुत्र विद्रोही थे और तत्कालीन धर्म के उलट-फेर में गौतम के विरोधी थे। इसीलिए इनका क्रूरतापूर्ण अतिरंजित चित्र बौद्ध-इतिहास में मिलता है। उस काल के राष्ट्रों के उलट-फेर में धर्म के दुराग्रह ने भी सम्भवत: बहुत-सा भाग लिया।

मागंधी (श्यामा) जिसके उकसाने से पद्मावती पर उदयन बहुत असंतुष्ट हुए थे, ब्राह्मण-कन्या थी, जिसको उसके पिता गौतम से ब्याहना चाहते थे, और गौतम ने उसका तिरस्कार किया था। इसी मागंधी को और बौद्धों के साहित्य में वर्णित आम्रपाली (अम्बपाली) को हमने कल्पना द्वारा एक में मिलाने का साहस किया है। अम्बपाली पतिता और वेश्या होने पर भी गौतम के द्वारा अंतिम काल में पवित्र की गयी। (कुछ लोग जीवक को इसीका पुत्र मानते हैं)

लिच्छवियों का निमंत्रण अस्वीकार करके गौतम ने उसकी भिक्षा ग्रहण की थी। बौद्धों की श्यामावती, वेश्या आम्रपाली, मागंधी और इस नाटक की श्यामा वेश्या का एकत्र संघटन, कुछ विचित्र तो होगा; किंतु चरित्र का विकास और कौतुक बढ़ाना ही इसका उद्देश्य है।

सम्राट् अजातशत्रु के समय में मगध साम्राज्य-रूप में परिणत हुआ। क्योंकि अंग और वैशाली का इसने स्वयं विजय किया था और काशी अब निर्विवाद रूप से उसके अधीन हो गयी थी। कोसल भी इसका मित्रराष्ट्र था। उत्तरीय भारत में यह इतिहास-काल का प्रथम सम्राट् हुआ।

मथुरा के समीप परखम गाँव में मिली हुई अजातशत्रु की मूर्त्ति देखकर मिस्टर जायसवाल की सम्मति है कि अजातशत्रु ने संभवतः पश्चिम में मथुरा तक भी विजय किया था।

जयशङ्कर 'प्रसाद'

पात्र-परिचय

पुरुष-पात्र

बिम्बिसार	: मगध का सम्राट्
अजातशत्रु (कुणीक)	: मगध का राजकुमार
उदयन	: कौशाम्बी का राजा, मगध-सम्राट् का जामाता
प्रसेनजित्	: कोसल का राजा
विरुद्धक (शैलेंद्र)	: कोसल का राजकुमार
गौतम	: बुद्धदेव
सारिपुत्र	: सद्धर्म के आचार्य
आनंद	: गौतम के शिष्य
देवदत्त (भिक्षु)	: गौतम बुद्ध का प्रतिद्वंद्वी
समुद्रदत्त	: देवदत्त का शिष्य
जीवक	: मगध का राजवैद्य
वसंतक	: उदयन की सभा का विदूषक
बंधुल	: कोसल का सेनापति
सुदत्त	: कोसल का कोषाध्यक्ष
दीर्घकारायण	: सेनापति बंधुल का भांजा, सहकारी सेनापति
लुब्धक	: शिकारी

(काशी का दंडनायक, अमात्य, दूत, दौवारिक और अनुचरगण)

स्त्री-पात्र

वासवी	: मगध-सम्राट् की बड़ी रानी	
छलना (चेल्लना)	: मगध-सम्राट् की छोटी रानी और राजमाता	
पद्मावती	: मगध की राजकुमारी	उदयन की रानियाँ
मागंधी (श्यामा)	: आम्रपाली	
वासवदत्ता	: उज्जयिनी की राजकुमारी	
शक्तिमती (महामाया)	: शाक्यकुमारी, कोसल की रानी	
मल्लिका	: सेनापति बंधुल की पत्नी	
बाजिरा	: कोसल की राजकुमारी	
नवीना	: सेविका	

(विजया, सरला, कंचुकी, दासी, नर्त्तकी इत्यादि)

प्रथम अंक



[प्रकोष्ठ में राजकुमार अजातशत्रु, पद्मावती, समुद्रदत्त और लुब्धक]

अजातशत्रु : क्यों रे लुब्धक ! आज तू मृगशावक नहीं लाया। मेरा चित्रक अब किससे खेलेगा ?

समुद्रदत्त : कुमार ! यह बड़ा दुष्ट हो गया है। आज कई दिनों से यह मेरी बात सुनता ही नहीं है।

लुब्धक : कुमार ! हम तो आज्ञाकारी अनुचर हैं। आज मैंने जब एक मृगशावक को पकड़ा, तब उसकी माता ने ऐसी करुणा भरी दृष्टि से मेरी ओर देखा कि उसे छोड़ते ही बना—अपराध क्षमा हो।

अजातशत्रु : हाँ, तो फिर मैं तुम्हारी चमड़ी उधेड़ता हूँ। समुद्र ! ला तो कोड़ा !

समुद्रदत्त : (कोड़ा लाकर देता है)—लीजिये। इसकी अच्छी पूजा कीजिये।

पद्मावती : (कोड़ा पकड़ कर) भाई कुणीक ! तुम इतने दिनों में ही बड़े निष्ठुर हो गये। भला उसे क्यों मारते हो ?

अजातशत्रु : उसने मेरी आज्ञा क्यों नहीं मानी ?

पद्मावती : उसे मैंने ही मना किया था, उसका क्या अपराध ?

समुद्रदत्त : (धीरे से)—तभी तो उसको आजकल गर्व हो गया है। किसी की बात नहीं सुनता।

अजातशत्रु : तो इस प्रकार तुम उसे मेरा अपमान करना सिखाती हो ?

पद्मावती : यह मेरा कर्त्तव्य है कि तुमको अभिशापों से बचाऊँ और अच्छी बातें सिखाऊँ। जा रे लुब्धक, जा, चला जा। कुमार जब मृगया खेलने जायँ, तो उनकी सेवा करना। निरीह जीवों को पकड़कर निर्दयता सिखाने में सहायक न होना।

अजातशत्रु : यह तुम्हारी बढ़ाबढ़ी मैं सहन नहीं कर सकता।

पद्मावती : मानवी-सृष्टि करुणा के लिए है, यों तो क्रूरता के निदर्शन हिंस्र पशु, जगत में क्या कम हैं ?

समुद्रदत्त : देवि ! करुणा और स्नेह के लिए तो स्त्रियाँ जगत् में हुई हैं, किंतु पुरुष भी क्या वही हो जायँ ।

पद्मावती : चुप रहो समुद्र ! क्या क्रूरता ही पुरुषार्थ का परिचय है ? ऐसी चाटूक्तियां भावी शासक को अच्छा नहीं बनातीं ।

(छलना का प्रवेश)

छलना : पद्मावती ! यह तुम्हारा अविचार है । कुणीक का हृदय छोटी-छोटी बातों में तोड़ देना, उसे डरा देना, उसकी मानसिक उन्नति में बाधा देना है ।

पद्मावती : माँ, यह क्या कह रही हो ! कुणीक मेरा भाई है, मेरे सुखों की आशा है, मैं उसे कर्त्तव्य क्यों न बताऊँ ? क्या उसे चाटुकारों की चाल में फँसते देखूँ और कुछ न कहूँ !

छलना : तो क्या तुम उसे बोदा और डरपोक बनाना चाहती हो ? क्या निर्बल हाथों से भी कोई राजदण्ड ग्रहण कर सकता है ?

पद्मावती : माँ, क्या कठोर और क्रूर हाथों से ही राज्य सुशासित होता है ? ऐसा विष-वृक्ष लगाना क्या ठीक होगा ? अभी कुणीक किशोर है, यही समय सुशिक्षा का है । बच्चों का हृदय कोमल थाला है चाहे इसमें कँटीली झाड़ी लगा दो, चाहे फूलों के पौधे ।

अजातशत्रु : फिर तुमने मेरी आज्ञा क्यों भंग होने दी ? क्या दूसरे अनुचर इसी प्रकार मेरी आज्ञा का तिरस्कार करने का साहस न करेंगे ?

छलना : यह कैसी बात ?

अजातशत्रु : मेरे चित्रक के लिए जो मृग आता था, उसे ले आने के लिए लुब्धक रोक दिया गया । आज वह कैसे खेलेगा ।

छलना : पद्मा ! तू क्या इसकी मंगल-कामना करती है ? इसे अहिंसा सिखाती है, जो भिक्षुओं की भद्दी सीख है ? जो राजा होगा, जिसे शासन करना होगा; उसे भिखमंगों का पाठ नहीं पढ़ाया जाता। राजा का परम धर्म न्याय है, वह दण्ड के आधार पर है। क्या तुझे नहीं मालूम कि वह भी हिंसामूलक है ?

पद्मावती : मां, क्षमा हो। मेरी समझ में तो मनुष्य होना राजा होने से अच्छा है।

छलना : तू कुटिलता की मूर्त्ति है। कुणीक को अयोग्य शासक बनाकर उसका राज्य आत्मसात् करने के लिये कौशाम्बी से आयी है।

पद्मावती : माँ ! बहुत हुआ, अन्यथा तिरस्कार न करो। मैं आज ही चली जाऊँगी।

(वासवी का प्रवेश)

वासवी : वत्स कुणीक ! कई दिनों से तुमको देखा नहीं ! मेरे मंदिर में इधर क्यों नहीं आये ? कुशल तो है ?

(अजात के सिर पर हाथ फेरती है)

अजातशत्रु : नहीं माँ, मैं तुम्हारे यहाँ नहीं आऊँगा, जब तक पद्मा घर न जायगी।

वासवी : क्यों ! पद्मा तो तुम्हारी ही बहिन है। उसने क्या अपराध किया है ? वह तो बड़ी सीधी लड़की है।

छलना : (क्रोध से) वह सीधी और तुम सीधी ! आज से कभी कुणीक तुम्हारे पास न जाने पावेगा, और तुम भी यदि भलाई चाहो तो प्रलोभन न देना।

वासवी : छलना ! बहिन !! यह क्या कह रही हो ? मेरा वत्स कुणीक ! प्यारा कुणीक !! हा भगवान् ! मैं उसे देखने न पाऊँगी ? मेरा क्या अपराध.......

अजातशत्रु : यह पद्मा, बार-बार मुझे अपदस्थ किया चाहती है, और जिस बात को मैं कहता हूँ, उसे ही रोक देती है।

वासवी : यह मैं क्या देख रही हूँ। छलना! यह गृह-विद्रोह की आग तू क्यों जलाया चाहती है? राज-परिवार में क्या सुख अपेक्षित नहीं है—

बच्चे बच्चों से खेलें, हो स्नेह बढ़ा उनके मन में,
कुल-लक्ष्मी हो मुदित, भरा हो मंगल उनके जीवन में।

बंधुवर्ग हों सम्मानित, हों सेवक सुखी, प्रणत अनुचर,
शांतिपूर्ण हो स्वामी का मन, तो स्पृहणीय न हो क्यों घर?

छलना : यह सब खाने को नहीं मिलता—उन्हें चाहिये। जो प्रभु हैं, जिन्हें पर्याप्त है, उन्हें किसी की क्या चिंता—जो व्यर्थ अपनी आत्मा को दबावें।

वासवी : क्या तुम मेरा भी अपमान किया चाहती हो? पद्मा तो जैसे मेरी वैसी ही तुम्हारी। उसे कहने का तुम्हें अधिकार है। किंतु तुम तो मुझसे छोटी हो, शील और विनय का यह दुष्ट उदाहरण सिखा कर बच्चों की क्यों हानि कर रही हो?

छलना : (स्वगत)—मैं छोटी हूँ, यह अभिमान तुम्हारा—अभी गया नहीं है।

(प्रकट)—छोटी हूँ या बड़ी, किंतु राजमाता हूँ। अजात को शिक्षा देने का मुझे अधिकार है। उसे राजा होना है। वह भिखमंगों का—जो अकर्मण्य होकर राज्य छोड़कर दरिद्र हो गये हैं—उपदेश नहीं ग्रहण करने पावेगा।

पद्मावती : माँ, अब चलो—यहाँ से चलो! नहीं तो मैं ही जाती हूँ।

वासवी : चलती हूँ बेटी! किंतु छलना—सावधान! यह असत्-गर्व मानव समाज का बड़ा भारी शत्रु है।

(पद्मावती और वासवी जाती हैं)



[महाराज बिम्बिसार एकाकी बैठे हुए आप-ही-आप कुछ विचार कर रहे हैं]

बिम्बिसार : आह, जीवन की क्षणभंगुरता देखकर भी मानव कितनी गहरी नींव देना चाहता है। आकाश के नीले पत्र पर

उज्ज्वल अक्षरा से लिखे अदृष्ट के लेख जब धीरे-धीरे लुप्त होने लगते हैं, तभी तो मनुष्य प्रभात समझने लगता है, और जीवन-संग्राम में प्रवृत्त हो अनेक अकांड-तांडव करता है। फिर भी प्रकृति उसे अंधकार की गुफा में ले जाकर उसके शांतिमय—रहस्यपूर्ण भाग्य का चिट्ठा समझाने का प्रयत्न करती है; किंतु वह कब मानता है? मनुष्य, व्यर्थ महत्व की आकांक्षा में मरता है; अपनी नीची, किंतु सुदृढ़ परिस्थिति से उसे संतोष नहीं होता; नीचे से ऊँचे चढ़ना ही चाहता है, चाहे फिर गिरे तो भी क्या ?

छलना : (प्रवेश करके)—और नीचे के लोग वहीं रहें ! वे मानो कुछ अधिकार नहीं रखते ? ऊपरवालों का यह क्या अन्याय नहीं है ?

बिम्बिसार : (चौंककर) कौन, छलना ?

छलना : हाँ महाराज ! मैं ही हूँ।

बिम्बिसार : तुम्हारी बात मैं नहीं समझ सका !

छलना : साधारण जीवों में भी उन्नति की चेष्टा दिखाई देती है महाराज ! इसको किसको चाह नहीं है। महत्व का यह अर्थ नहीं कि सबको क्षुद्र समझे !

बिम्बिसार : तब ?

छलना : यही कि मैं छोटी हूँ, इसलिए पटरानी नहीं हो सकी, और वासवी मुझे इस बात पर अपदस्थ किया चाहती है।

बिम्बिसार : छलना ! यह क्या ! तुम तो राजमाता हो। देवी वासवी के लिए थोड़ा सम्मान रक्षित कर लेना तुम्हें विशेष लघु नहीं बना सकता—उन्होंने कभी तुम्हारी अवहेलना भी तो नहीं की।

छलना : इन भुलावों में मैं नहीं आ सकती—महाराज ! मेरी धमनियों में लिच्छवि-रक्त बड़ी शीघ्रता से दौड़ता है। यह नीरव अपमान, यह सांकेतिक घृणा मुझे सह्य नहीं,

और जबकि खुल कर कुणीक का अपकार किया जा रहा है, तब तो—

बिम्बिसार : ठहरो ! तुम्हारा यह अभियोग अन्यायपूर्ण है। क्या इसी कारण तो बेटी पद्मावती नहीं चली गयी ? क्या इसी कारण तो कुणीक मेरी भी आज्ञा सुनने में आनाकानी नहीं करने लगा है ? कैसा उत्पात मचाया चाहती हो ?

छलना : मैं उत्पात रोकना चाहती हूँ। आपको कुणीक के युवराज्याभिषेक की घोषणा आज ही करनी पड़गी।

वासवी : (प्रवेश करके)—नाथ, मैं भी इसमें सहमत हूँ। मैं चाहती हूँ कि उत्सव देखकर और आपकी आज्ञा लेकर मैं कोसल जाऊँ। सुदत्त आज आया है, भाई ने मुझे बुलाया है।

बिम्बिसार : कौन, देवी वासवी !

वासवी : हाँ महाराज !

कंचुकी : (प्रवेश करके) महाराज ! जय हो ! भगवान् तथागत गौतम आ रहे हैं।

बिम्बिसार : सादर लिवा लाओ—(कंचुकी का प्रस्थान) छलना ! हृदय का आवेग कम करो, महाश्रमण के सामने दुर्बलता न प्रकट होने पावे।

(अजात को साथ लिए हुए गौतम का प्रवेश/सब नमस्कार करते हैं)

गौतम : कल्याण हो ! शांति मिले !

बिम्बिसार : भगवन्, आपने पधारकर मुझे अनुगृहीत किया।

गौतम : राजन् ! कोई किसी को अनुगृहीत नहीं करता। विश्व भर में यदि कुछ कर सकती है तो वह करुणा ही है, जो प्राणिमात्र में समदृष्टि रखती है—

गोधूली के राग-पटल में स्नेहांचल फहराती है।
स्निग्ध उषा के शुभ्र गगन में हास-विलास दिखाती है।।

मुग्ध मधुर बालक के मुख पर चंद्रकांति बरसाती है।
निर्निमेष ताराओं से वह ओस-बूँद भर लाती है।।

निष्ठुर आदि-सृष्टि पशुओं की विजित हुई इस करुणा से ।
मानव का महत्व जगती पर फैला अरुणा करुणा से ।।

बिंबसार : करुणामूर्त्ति ! हिंसा से रँगी हुई वसुंधरा आपके चरणों से स्पर्श से अवश्य ही स्वच्छ हो जाएगी । उसकी कलंक-कालिमा धुल जायगी ।

गौतम : राजन्, शुद्ध बुद्धि तो सदैव निर्लिप्त रहती है । केवल साक्षी रूप से वह सब दृश्य देखती है । तब भी, इन सांसारिक झगड़ों में उसका उद्देश्य होता है कि न्याय का पक्ष विजयी हो—यही न्याय का समर्थन है । तटस्थ की यही शुभेच्छा सत्त्व से प्रेरित होकर समस्त सदाचारों की नींव विश्व में स्थापित करती है । यदि वह ऐसा न करे, तो अप्रत्यक्ष रूप से अन्याय का समर्थन हो । जाता है—हम विरक्तों को भी इसीलिये राजदर्शन की आवश्यकता हो जाती है ।

बिम्बिसार : भगवान् को शांतिवाणी की धारा—प्रलय की नरकाग्नि को भी बुझा देगी—मैं कृतार्थ हुआ ।

छलना : (नीचा सर करके)—भगवान् ! यदि आज्ञा हो, तो मैं जाऊँ ।

गौतम : रानी ! तुम्हारे पति और देश के सम्राट् के रहते—मुझे कोई अधिकार नहीं कि तुम्हें आज्ञा दूँ । तुम इन्हीं से आज्ञा ले सकती हो ।

बिम्बिसार : (घूमकर देखते हुए)—हाँ, छलने ! तुम जा सकती हो, किंतु कुणीक को न ले जाना, क्योंकि तुम्हारा मार्ग टेढ़ा है ।

(छलना का क्रोध से प्रस्थान)

गौतम : यह तो मैं पहले ही समझता था, किंतु छोटी रानी के साथ अन्य लोगों को भी विचार से काम लेना चाहिये ।

बिम्बिसार : भगवन् ! हम लोगों का क्या अविचार आपने देखा ?

गौतम : शीतल वाणी—मधुर व्यवहार से—क्या वन्य-पशु भी वश में नहीं हो जाते ? राजन्, संसार-भर के उपद्रवों का मूल

व्यंग्य है। हृदय में जितना यह घुसता है, उतना ही कटार नहीं। वाक्-संयम विश्वमैत्री की पहली सीढ़ी है। अस्तु, अब मैं तुमसे एक काम की बात कहना चाहता हूँ—क्या तुम मानोगे ? क्यों महारानी ?

बिम्बिसार : अवश्य।

गौतम : तुम आज ही अजातशत्रु को युवराज बना दो और इस भीषण भोग से कुछ विश्राम लो। क्यों राजकुमार, तुम राज्य का कार्य मंत्रि-परिषद् की सहायता से चला सकोगे ?

अजातशत्रु : क्यों नहीं, पिताजी यदि आज्ञा दें।

गौतम : यह बोझ, जहाँ तक शीघ्र हो, यदि एक अधिकारी व्यक्ति को सौंप दिया जाय, तो मानव को प्रसन्न ही होना चाहिये, क्योंकि राजन्, इससे कभी-न-कभी तुम हटाये जाओगे; जैसा कि विश्व भर का नियम है। फिर, यदि तुम उसे उदारता से भोग कर छोड़ दो, तो इसमें क्या दुःख ?

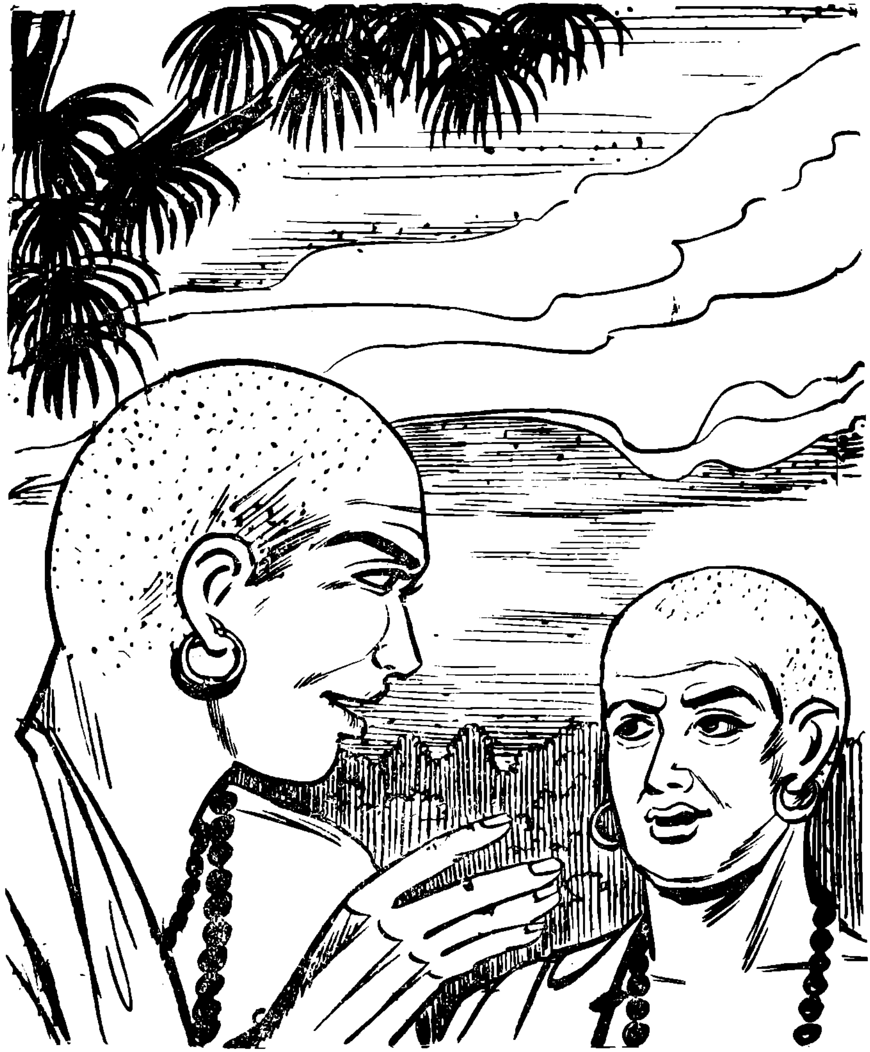
बिम्बिसार : योग्यता होनी चाहिये महाराज ! यह बड़ा गुप्तचर कार्य है। नवीन रक्त राज्य-श्री को सदैव तलवार के दर्पण में देखना चाहता है।

गौतम : (हँसकर) ठीक है। किंतु, काम करने के पहले किसी ने ने भी आज तक विश्वस्त प्रमाण नहीं दिया कि वह कार्य के योग्य है। यह तुम्हारा बहाना राज्याधिकार की आकांक्षा प्रकट कर रहा है। राजन् समझ लो—इस गृह-विवाद और आंतरिक झगड़ों से विश्राम लो।

वासवी : भगवन् ! हम लोगों के लिये एक छोटा-सा उपवन पर्याप्त है। मैं वहीं नाथ के साथ रहकर सेवा कर सकूँगी।

बिम्बिसार : तब जैसी आपकी आज्ञा—(कंचुकी से) राज परिषद् सभा-गृह में एकत्र हो; कंचुकी, शीघ्रता करो !

(कंचुकी का प्रस्थान)



[पथ में समुद्रदत्त और देवदत्त]

देवदत्त : वत्स ! मैं कार्यवाही से प्रसन्न हूँ। हाँ फिर क्या हुआ — क्या अजात का राजतिलक हो गया ?

समुद्रदत्त : शुभ मुहूर्त्त में सिंहासन पर बैठना ही शेष है और परिषद् का कार्य तो उनकी देखरेख में होने लगा। कुशलता से राजकुमार ने कार्यारंभ किया है; किंतु गौतम यदि न चाहते तो यह काम सरलता से न हो सकता।

देवदत्त : फिर उसी ढकोसले वाले ढोंगी की प्रशंसा! अरे समुद्र, यदि मैं इसकी चेष्टा न करता, तो यह सब कुछ न होता—लिच्छविकुमारो में इतना मनोबल कहाँ कि वह यों अड़ जाती।

समुद्रदत्त : तो युवराज ने आपको बुलाया है, क्योंकि रानी वासवी और महाराज बिम्बिसार संभवत: अपनी नवीन कुटी में चले गये होंगे। अब यह राज्य केवल राजमाता और युवराज के हाथ में है। उनकी इच्छा है कि आपके सदुपदेश से राज्य सुशासित हो।

देवदत्त : (कुछ बनता हुआ)—यह झंझट भला मुझ विरक्त से कहाँ होगा। फिर भी लोकोपकार के लिये कुछ करना ही पड़ता है।

समुद्रदत्त : किंतु गुरुदेव! युवराज है बड़ा उद्धत, उसके संग रहने में भी डर मालूम पड़ता है। बिना आपकी छाया के मैं तो नहीं रह सकता।

देवदत्त : वत्स समुद्र! तुम नहीं जानते कि कितना गुप्तर काम तुम्हारे हाथ में है। मगध-राष्ट्र का उद्धार इस भिक्षु के हाथों से करना ही होगा। जब राजा ही उसका अनुयायी है, फिर जनता क्यों न भाड़ में जायगी। यह गौतम बड़ा ही कपट-मुनि है। देखते नहीं, यह कितना प्रभावशाली होता जा रहा है, नहीं तो मुझे इन झगड़ों से क्या काम?

समुद्रदत्त : तब क्या आज्ञा है?

देवदत्त : गौतम का प्रभाव मगध पर से तब तक नहीं हटेगा, जब तक बिम्बिसार राजगृह से दूर न जायगा। यह राष्ट्र का शत्रु गौतम समग्र जंबूद्वीप को भिक्षु बनाना चाहता है और

अपने को उनका मुखिया। इस तरह जंबूद्वीप भर पर एक दूसरे रूप में शासन करना चाहता है।

जीवक : (सहसा प्रवेश करके)—आप विरक्त हैं और मैं गृही। किंतु जितना मैंने आपके मुख से अकस्मात् सुना है वही पर्याप्त है कि मैं आपको रोककर कुछ कहूँ। संघभेद करके आपने नियम तोड़ा है, उसी तरह राष्ट्रभेद करके क्या देश का नाश करना चाहते हैं ?

देवदत्त : यह पुरानी मंडली का गुप्तचर है, समुद्र ! युवराज से कहो कि इसका उपाय करें। यह विद्रोही है, इसका मुख बंद होना चाहिये।

जीवक : ठहरो, मुझे कह लेने दो। मैं ऐसा डरपोक नहीं हूँ कि जो बात तुमसे कहनी है, उसे मैं दूसरों से कहूँ। मैं भी राजकुल का प्राचीन सेवक हूँ। तुम लोगों की यह कूटमंत्रणा—अच्छी तरह समझ रहा हूँ। इसका परिणाम कदापि अच्छा नहीं। सावधान, मगध का अधःपतन दूर नहीं है। (जाता है)

सुदत्त : (प्रवेश करके)—आर्य समुद्रदत्तजी ! कहिये, मेरे जाने का प्रबंध ठीक हो गया है न ? कोसल पहुँच जाना—शीघ्र मेरे लिए आवश्यक है। महारानी तो अब जायेंगी नहीं, क्योंकि मगध-नरेश ने वानप्रस्थ आश्रम का अवलंबन लिया है, फिर मैं ठहर कर क्या करूँगा ?

समुद्रदत्त : किंतु युवराज ने तो अभी आपको ठहरने के लिए कहा है।

सुदत्त : नहीं, मुझे एक क्षण भी यहाँ ठहरना अनुचित जान पड़ता है। मैं इसीलिए आपको खोजकर मिला हूँ। मुझे यहाँ का समाचार कोसल में शीघ्र पहुँचाना होगा। युवराज से मेरी ओर से क्षमा मांग लीजियेगा। (जाता है)

देवदत्त : चलो, युवराज के पास चलें।

(दोनों जाते हैं)



[उपवन में महाराज बिम्बिसार और महारानी वासवी]

बिम्बिसार : देवि, तुम कुछ समझती हो कि मनुष्य के लिए एक पुत्र का होना क्यों इतना आवश्यक समझा गया है ?

वासवी : नाथ ! मैं तो समझती हूँ कि वात्सल्य नाम का जो पुनीत स्नेह है, उसी के पोषण के लिए।

बिम्बिसार : स्नेहमयी ! वह भी हो सकता है, किंतु मेरे विचार में कोई और ही बात है।

वासवी : वह क्या नाथ ?

बिम्बिसार : संसारी को त्याग, तितिक्षा या विराग का पथिक होने के लिए पहला और सहज साधन है। पुत्र को समस्त अधिकार देकर वीतराग हो जाने से असंतोष नहीं होता, क्योंकि मनुष्य अपने ही आत्मा का भोग उसे भी समझता है।

वासवी : मुझे मह जानकर प्रसन्नता हुई कि आपको अधिकार से वंचित होने का दुःख नहीं।

बिम्बिसार : दुःख तो नहीं, देवी ! फिर भी इस कुणीक के व्यवहार से अधिकार का ध्यान हो आता है। तुम्हें विश्वास हो या न हो, किंतु कभी-कभी याचकों का लौट जाना, मेरी वेदना का कारण होता है।

वासवी : नाथ ! जो आपका है वही न राज्य का है, उसी का अधिकारी कुणीक है, और जो कुछ मुझे मेरे पीहर से मिला है, उसे जब तक मैं न छोड़ूं—तब तक तो मेरा ही है !

बिम्बिसार : इसका क्या अर्थ है ?

वासवी : काशी का राज्य मुझे, मेरे पिता ने, आँचल में दिया है, उसकी आय आपके हाथ में आनी चाहिये और मगध-साम्राज्य की एक कौड़ी भी आप न छुएँ। नाथ ! मैं ऐसा द्वेष से नहीं कहती हूँ; किंतु केवल आपका मान बचाने के लिए।

बिम्बिसार : मुझे फिर उन्हीं झगड़ों में पड़ना होगा देवि, जिन्हें अभी छोड़ आया।

(जीवक का प्रवेश)

जीवक : महाराज की जय हो।

बिम्बिसार : जीवक, यह कैसा परिहास ! यह सम्बोधन अब क्यों ? यहाँ तुम कैसे आये ?

जीवक : यह अभ्यास का दोष है। मै श्रीमान् के साथ ही रहूँगा; अब मुझे वह पुरानी गृहस्थी अच्छी नहीं लगती।

बिम्बिसार : इस कारण वैराग्य का कोई अर्थ भी है

जीवक : कुछ नहीं राजाधिराज ! और है तो यही कि जिन आत्मीयों के लिए निष्कपट भाव से मैं परिश्रम करता हुआ उन्हें सुख देने का प्रबन्ध करता हूँ, वे भी विद्रोही हो जाते हैं।

वासवी : महाराज, जीवन की सारी क्रियाओं का अन्त केवल अनन्त विश्राम में है। इस बाह्य हलचल का उद्देश्य आन्तरिक शान्ति है, फिर जब उसके लिए व्याकुल पिपासा जग उठे, तब उसमें विलम्ब क्यों करें ?

जीवक : यही विचार कर मैं भी स्वामी की शरण आया हूँ, क्योंकि समुद्रदत्त की चालें मुझे नहीं रुचतीं। अदृष्ट का आदेश जानकर मैं भी आपका अनुगामी हो गया हूँ।

बिम्बिसार : क्या अदृष्ट सोचकर, अकर्मण्य बनकर, तुम भी मेरी तरह बैठ जाना चाहते हो ?

जीवक : नहीं महाराज ! अदृष्ट तो मेरा सहारा है। नियति की डोरी पकड़कर मैं निर्भय कर्मकूप में कूद सकता हूँ, क्योंकि मुझे विश्वास है कि जो होना है वह तो होगा ही, फिर कायर क्यों बनूँ—कर्म से क्यों विरक्त रहूँ— मैं इस उच्छृ-खल नवीन राजशक्ति का विरोधी हो कर आपकी सेवा करने आया हूँ।

वासवी : यह तुम्हारी उदारता है, किन्तु हम लोगों को किस बात की शंका है जो तुम व्यस्त हो ?

जीवक : देवदत्त, निष्ठुर देवदत्त के कुचक्र से महाराज की जीवन-रक्षा होनी ही चाहिये।

बिम्बिसार : ग्राश्चर्य ! यह मैं क्या सुन रहा हूँ ! जीवक ! मुझे भ्रान्ति में न डालो—विष का घड़ा मेरे हृदय पर न ढ़ालो। भला ग्रब मेरे प्राण से मगध-साम्राज्य का क्या सम्बन्ध है ? देवदत्त मुझसे क्यों इतना ग्रसन्तुष्ट है ?

जीवक : बुद्धदेव की प्रतिद्वंद्विता ने उसे ग्रन्धा कर दिया है—महत्वाकांक्षा उसे एक गर्त्त में गिरा रही है। उसकी वह आशा कब तक सफल न होगी, जब तक आप जीवित रहकर गौतम की प्रतिष्ठा बढ़ाते रहेंगे और उनको सहायता करते रहेंगे।

बिम्बिसार : मूर्खता—नहीं-नहीं, यह देवदत्त की क्षुद्रता है। भला ग्रात्म-बल या प्रतिभा किसी की प्रशंसा के बल से विश्व में खड़ी होती है ? ग्रपना ग्रवलम्ब वह स्वयं है, इसमें मेरी इच्छा या अनिच्छा क्या। वह दिव्य-ज्योति स्वत: सबकी ग्राँखों को ग्राकर्षित कर रही है। देवदत्त का विरोध उसे केवल उन्नति दे सकेगा।

जोवक : देव ! फिर भी जो ईर्ष्या की पट्टी ग्राँखों पर चढ़ाये हैं, वे इसे नहीं देख सकते। ग्रब मुझे क्या ग्राज्ञा है, क्योंकि यह जोवन ग्रब आप ही की सेवा के लिए—उत्सर्ग है।

वासवी : जीवक, तुम्हारा कल्याण हो, तुम्हारी सद्बुद्धि तुम्हारी चिरसंगिनी रहे। महाराज को ग्रब स्वतन्त्र वृत्ति की ग्राव-श्यकता है, ग्रत: काशी प्रान्त का राजस्व, जो हमारा प्राप्य है, लाने का उद्योग करना होगा। मगध-साम्राज्य से हम किसी प्रकार का सम्बन्ध न रखेंगे।

जीवक : देवि ! इसके पहले एक बार मेरा कौशाम्बी जाना ग्रावश्यक है।

बिम्बिसार : नहीं जीवक ! मुझे किसी को सहायता को ग्रावश्यकता नहीं, अब वह राष्ट्रीय झगड़ा मुझे नहीं रुचता।

वासवी : तब भी आपको भिक्षावृत्ति नहीं करनी होगी। अभी हम लोगों में वह त्याग, मानापमान-रहित अपूर्व स्थिति नहीं आ सकेगी। फिर जो शत्रु से भी अधिक घृणित व्यवहार करना चाहता हो, उसकी भिक्षावृत्ति पर अवलम्बन करने को हृदय नहीं कहता।

जीवक : तो सुदत्त कोसल जा चुके हैं और कौशाम्बी में भी यह समाचार पहुँचाना आवश्यक है। इसीलिए मैं कहता था; और कोई बात नहीं। काशी के दण्डनायक से भी मिलता जाऊँगा।

बिम्बिसार : जैसी तुम लोगों की इच्छा।

वासवी : नाथ! मैं आपसे छिपाती थी, फिर भी कहना ही पड़ा कि हम लोग वानप्रस्थ आश्रम में भी स्वतन्त्र नहीं रखे गये हैं।

बिम्बिसार : (निःश्वास लेकर) ऐसा!—जो कुछ हो—

(गाते हुए भिक्षुओं का प्रवेश)

न धरो कहकर इसको 'अपना'।
यह दो दिन का है सपना।। न धरो०।।

वैभव का बरसाती नाला, भरा पहाड़ी झरना।
बहो, बहाओ नहीं अन्य को, जिससे पड़े कलपना।।
न धरो०।।

दुखियों का कुछ आँसु पोंछ लो, पड़े आहें भरना।
लोभ छोड़कर हो उदार; बस, एक 'उसी' को जपना।।
न धरो०।।

बिम्बिसार : देवी, इन्हें कुछ दो—

वासवी : और तो कुछ है नहीं—(कंकण उतार कर देती है) प्रभु! स्वर्ण और रत्नों का आँखों पर बड़ा रंग रहता है, जिससे मनुष्य अपना अस्थि-चर्म का शरीर तक नहीं देखने पाता—

(भिखारी जाते हैं)



[कौशाम्बी में मागन्धी का मन्दिर]

मागन्धी : (स्वगत)—इस रूप का इतना अपमान ! सो भी एक दरिद्र भिक्षु के हाथ ! मुझसे ब्याह करना अस्वीकार किया !

यहाँ मैं राजरानी हुई, फिर भी ज्वाला न गयी; यहाँ रूप का गौरव हुआ, तो धन के अभाव से दरिद्रकन्या होने के अपमान की यन्त्रणा में पिस रही हूँ ! अच्छा, इसका भी प्रतिशोध लूँगी, अब से यही मेरा व्रत हुआ। उदयन राजा है, तो मैं भी अपने हृदय की रानी हूँ। दिखला दूँगी कि स्त्रियाँ क्या कर सकती हैं !

(एक दासी का प्रवेश)

दासी : देवि क्या आज्ञा है ?

मागंधी : तू ही न गयी थी गौतम समाचार लाने, वह आजकल पद्मावती के मन्दिर में भिक्षा लेने आता है न ?

दासी : आता है स्वामिनी ! वह घण्टों महल में बैठकर उपदेश करता है। महाराज भी वहीं बैठकर वक्तृता सुनते हैं, बड़ा आदर करते हैं।

मागंधी : तभी कई दिनों से इधर नहीं आते हैं, अच्छा नर्त्तकियों को तो बुला ला। नवीना से भी कह दे दि वह शीघ्र आवे और आसव लेती आवे।

(दासी का प्रस्थान)

मागंधी : (आप-ही-आप)—गौतम ! यह तुम्हारी तितिक्षा तुम्हें कहाँ ले जायेगी ? यह तुमने कभी न विचारा कि सुन्दरी स्त्रियाँ भी ससार में कुछ अपना अस्तित्व रखती हैं। अच्छा तो देखें कौन खड़ा रहता है ?

(नवीना का पान-पात्र लेकर प्रवेश)

नवीना : देवी की जय हो !

मागंधी : तुम्हें भी बुलाना होगा, क्यों ? महाराज नहीं आते हैं तो तुम सब महारानी हो गयी हो न ?

नवीना : दासी को आज्ञा मिलनी चाहिए, यह तो प्रतिक्षण श्रीचरणों में रहती है।

(पान कराती है)

मागंधी : महाराज आवेंगे कि नहीं, इसका पता लगाकर शीघ्र आओ—

(नवीना जाती है)

मागंधी : (आप-ही-आप गाती है)

अली ने क्यों भला अवहेला की।

चम्पक-कली खिली सौरभ से उषा मनोहर बेला की।
विरस दिवस, मन बहलाने को मलयज से फिर खेला की।।

अली ने क्यों भला अवहेला की।

नवीना : (प्रवेश करके)—महाराज आया ही चाहते हैं।

मागंधी : अच्छा, आज मुझे बड़ा काम करना है, नवीना! नर्त्तकियों को शीघ्र बुला। मेरी वेश-भूषा ठीक है न—देखो तो—

नवीना : वाह स्वामिनी, तुम्हें वेष-भूषा की क्या आवश्यकता है—यह सहज सुन्दर रूप बनावटों से और भी बिगड़ जायगा।

मागंधी : (हँसकर)—अच्छा-अच्छा, रहने दे, और सब उपकरण ठीक रहे, समझी? कोई वस्तु अस्त-व्यस्त न रहे। अप्रसन्नता की कोई बात न होने पावे। उस दिन जो कहा है, वह ठीक रहे।

नवीना : वह भी आपके फिर से कहने की आवश्यकता है? सब अभी ठीक किये देती हूँ।

(नवीना जाती है/एक ओर से उदयन का और दूसरी ओर से नर्त्तकियों का प्रवेश—सब नाचती हैं और मागंधी उदयन का हाथ पकड़कर बैठाती है/नर्त्तकियों का गान)

प्यारे, निर्मोही होकर मत हमको मत भूलना रे!
बरसो सदा दया-जल शीतल,
सिंचे हमारा हृदय-मरुस्थल,
अरे कँटीले फूल इसी में फूलना रे,

(नर्त्तकियाँ जाती हैं)

मागंधी : आर्यपुत्र! क्या कई दिनों तक मेरा ध्यान भी न आया? क्या मुझसे कोई अपराध हुआ था?

उदयन : नहीं प्रिये ! मगध से गौतम नाम के महात्मा आये हैं, जो अपने को 'बुद्ध' कहते हैं। देवी पद्मावती के मन्दिर में उनका संघ निमन्त्रित होता था और वे उपदेश देते थे। महादेवी वासवदत्ता भी वहीं नित्य आती थीं।

मागंधी : (बात काटकर)—तब फिर मुझे क्यों पूछा जाय !

उदयन : (आदर से) —नहीं-नहीं यह तो तुम्हारी भूल थी, बुलवाने पर भी नहीं आयी। वाह ! सुनने के योग्य उपदेश होता था। अभी तो कई दिन होगा। हमने अनुरोध किया है कि वे कुछ दिनों तक ठहर कर कौशाम्बी में धर्म का प्रचार करें।

मागंधी : आप पृथ्वीनाथ हैं, सब कुछ आपको सोहाता है किन्तु मैं तो अच्छी आँखों से इस गौतम को नहीं देखती। मगध के राजमन्दिर में ही मुड़ियों का स्वांग अच्छा है; कौशाम्बी इस खण्ड से बची रहे तो बड़ा उत्तम हो। स्त्रियों के मन्दिर में उपदेश क्यों हो—क्या उन्हें पातिव्रत छोड़कर किसी और भी धर्म की आवश्यकता है ?

(पान पात्र बढ़ाती है)

उदयन : ठहरो मागंधी ! पुरुष का हृदय बड़ा सशंक होता है, क्या तुम इसे नहीं जानती ? क्या अभी-अभी तुमने कुछ विषाक्त व्यंग्य नहीं किया है ? यह मदिरा अब मैं नहीं पीऊँगा। अभी आज ही भगवान् का इसी पर उपदेश हुआ है, पर मैं देखता हूँ कि मदिरा से पहिले तुमने हलाहल मेरे हृदय में ऊँढ़ेल दिया। यह व्यंग्य सूखे ग्रास की तरह नीचे भी नहीं नहीं उतरता और बाहर भी नहीं पाता।

मागंधी : क्षमा कीजिये नाथ ! मैं प्रार्थना करती हूँ, अपने हृदय को इस हाला से तृप्त कीजिये। अपराध क्षमा हो ! मैं दरिद्र-कन्या हूँ। मुझे आपके पाने पर और किसी की अभिलाषा नहीं है। वे आपको पा चुकी हैं, अब उन्हें और कुछ की बलवती आकांक्षा है, चाहे लोग उसे धर्म ही क्यों न कहे। मुझमें इतनी सामर्थ्य भी नहीं।

उदयन : हूँ, अच्छा देखा जायगा। (मुग्ध होकर) उठो मागंधी उठो! मुझे अपने हाथों से अपना प्रेम-पूर्ण पात्र शीघ्र, पिलाओ, फिर कोई बात होगी।

(मागंधी मदिरा पिलाती है)

उदयन : (प्रेमोन्मत्त होकर)—तो मागंधी, कुछ गाओ। अब मुझे अपने मुखचन्द्र को निर्निमेष देखने दो कि मैं एक अतीन्द्रिय जगत की नक्षत्रमालिनी निशा को प्रकाशित करने वाले शरच्चन्द्र की कल्पना करता हुआ भावना की सीमा को लाँघ जाऊँ, और तुम्हारा सुरभि-नि:श्वास मेरी कल्पना का आलिंगन करने लगे।

मागंधी : वही तो मैं भी चाहती हूँ कि मेरी मूर्च्छना मेरे प्राणनाथ की विश्वमोहिनी वीणा की सहकारिणी हो, हृदय और तन्त्री एक होकर बज उठें, विश्व-भर जिसके सम पर सिर हिला दे और पागल हो जाय!

उदयन : हाँ, मागंधी! वह रूप तुम्हारा—बड़ा प्रभावशाली था, जिसने उदयन को तुम्हारे चरणों में लुटा दिया (मद्यप की-सी चेष्टा करता है)—किसी को भेजो कि पद्मावती के मन्दिर से····

मागंधी : (दासी से)—आर्यपुत्र को हस्तिस्कन्ध-वीणा ले आओ।

(दासी जाती है)

उदयन : तब तक तुम हो कुछ सुनाओ।

(मागंधी पान करती है और गाती है)

"आओ हिये में अहो प्राण प्यारे!

नैन भये निर्मोही, नहीं अब देखे बिना रहते हैं तुम्हारे।।
सबको छोड़ तुम्हें पाया है, देखूँ कि तुम होते हो हमारे।
तपन बुझे तन की औ मन की, हों हम-तुम पल एक न न्यारे।।
आओ हिये में अहो प्राण प्यारे!"

उदयन : हृदयेश्वरी ! कौन मुझसे तुमको अलग कर सकता है ?

"हमारे वक्ष में बनकर हृदय, यह छवि समायेगी।
स्वयं निज माधुरी छवि का रसीला गान गायेगी।।

अलग तब चेतना ही चित्त में कुछ रह न जायेगी।
अकेले विश्व-मन्दिर में तुम्ही को पूज पायेगी।।"

मागंधी : प्रियतम मैं दासी हूँ !

उदयन : नहीं, तुम आज से मेरी स्वामिनी बनो।

(दासी वीणा लेकर आती है; उदयन के सामने रखती है। उदयन के उठाने के साथ ही साँप का बच्चा निकल पड़ता है— मागंधी चिल्ला उठती है)

मागंधी : पद्मावती ! तू यहाँ तक आगे बढ़ चुकी है ! जो मेरी शंका थी, वह प्रत्यक्ष हुई।

उदयन : (क्रोध से उठकर खड़ा हो जाता है)—अभी इसका प्रतिशोध लूँगा। ओह ! ऐसा पाखण्ड-पूर्ण आचरण ! असह्य !

मागंधी : क्षमा सम्राट ! आपके हाथ में न्याय दण्ड है। केवल प्रतिहिंसा से आपका कोई कर्त्तव्य निर्धारित न होना चाहिए, सहसा भी नहीं। प्रार्थना है कि आज विश्राम करें; कल विचार कर कोई काम कीजियेगा।

उदयन : नहीं। (सिर पकड़कर) किन्तु फिर भी तुम कह रही हो, — अच्छा, मैं विश्राम चाहता हूँ।

मागंधी : यहीं…?

(उदयन लेटता है, मागंधी पैर दबाती है)



[कौशाम्बी के पथ में जीवक]

जीवक : (आप-ही-आप)—राजकुमारी से भेंट हुई और गौतम के दर्शन भी हुए, किंतु मैं तो चकित हो गया हूँ कि क्या करूँ !

वासवी देवी और उनकी कन्या पद्मावती, दोनों की एक तरह की अवस्था है। जिसे अपना ही सँभालना दुष्कर है, वह वासवी की सहायता कर सकेगी ! सुना है कि कई दिनों से पद्मावती के मन्दिर में उदयन जाते ही नहीं; और व्यवहारों से भी कुछ असंतुष्ट-से दिखलाई पड़ते है; क्योंकि उन्हीं के परिजन होने के कारण मुझसे भी अच्छी तरह न बोले, और महाराज बिम्बिसार की कथा सुनकर भी कोई मत नहीं प्रकट किया। दासी आने को थी, वह भी नहीं आई। क्या करूँ ?

(दासी का प्रवेश)

दासी : नमस्कार ! देवी ने कहा है, आर्य जीवक से कहो कि मेरी चिन्ता न करें। माताजी की देख-रेख उन्हीं पर है, अब वे शीघ्र ही मगध चले जायँ। देवता जब प्रसन्न होंगे, उनसे अनुरोध करके कोई उपाय निकालूँगी और पिताजी के श्री-चरणों का भी दर्शन करूँगी। इस समय तो उनका जाना ही श्रेयस्कर है। महाराज की विरक्ति से मैं उनसे भी कुछ कहना नहीं चाहती। सम्भव है कि उन्हें किसी षड्यन्त्र की आशंका हो, क्योंकि नयी रानी ने मेरे विरुद्ध कान भर दिये हैं, इसलिए मुझे अपनी कन्या समझ कर क्षमा करेंगे। मैं इस समय बहुत दुःखी हो रही हूँ, कर्त्तव्य-निर्धारण नहीं कर सकती।

जीवक : राजकुमारी से कहना कि मैं उनकी कल्याण-कामना करता हूँ। भगवान् की कृपा से वे अपने पूर्व गौरव का लाभ करें और मगध की कोई चिंता न करें। मैं केवल संदेश देने यहाँ चला आया था। अभी मुझे शीघ्र कोसल जाना होगा।

जीवक : बहुत अच्छा।

(नमस्कार करके जाती है/गौतम का संघ के साथ प्रवेश)

दासी : महाश्रमण के चरणों में अभिवादन करता हूँ।

गौतम : कहो, मगध के क्या समाचार हैं? मगध-नरेश सकुशल तो हैं?

जीवक : तथागत ! आपसे क्या छिपा है ? मगध-राजकुल में बड़ी अशान्ति है। वानप्रस्थ-आश्रम में भी महाराज बिम्बिसार को चैन नहीं है।

गौतम : जीवक !

चञ्चल चन्द्र, सूर्य है चञ्चल
चपल सभी ग्रह तारा हैं ।
चञ्चल अनिल, अनल, जल, थल, सब
चञ्चल जैसे पारा है ।
जगत प्रगति से अपने चञ्चल,
मन की चञ्चल लीला है ।
प्रति क्षण प्रकृति चञ्चला कैसी
यह परिवर्तनशीला है ।
अणु-परमाणु, दुःख-सुख चञ्चल
क्षणिक सभी सुख साधन हैं ।
दृश्य सकल नश्वर-परिणामी,
किसको दुख, किसको धन है ?
क्षणिक सुखों को स्थायी कहना
दुःख-मूल यह भूल महा ।
चञ्चल मानव ! क्यों भूला तू,
इस सीठी में सार कहाँ ?

जीवक : प्रभु ! सत्य है ।

गौतम : कल्याण हो । सत्य की रक्षा करने से, वही सुरक्षित कर लेता है । जीवक निर्भय होकर पवित्र कर्त्तव्य करो ।

(गौतम का संघ सहित प्रस्थान विदूषक वसन्तक का प्रवेश)

वसन्तक : अहा वैद्यराज ! नमस्कार । बस एक रेचक और थोड़ा-सा बस्तिकर्म्म—इसके बाद गर्मी-ठण्ढी ! अभी आप हमारे नमस्कार का भी उत्तर देने के लिये मुख न खोलिये, पहले रेचक प्रदान कीजिये । निदान में समय नष्ट न कीजिये ।

जीवक : (स्वगत)—यह विदूषक इस समय कहाँ से आ गया । भगवान्, किसी तरह हटे ।

वसन्तक : क्या आप निदान कर रहे हैं ? अजी अजीर्ण है, अजीर्ण । पाचन देना हो दो, नहीं तो हम अच्छी तरह जानते हैं कि वैद्य लोग अपने मतलब से रेचन तो अवश्य ही देंगे । अच्छा, हाँ कहो तो, बुद्धि के अजीर्ण में भी रेचन ही गुणकारी

होगा ? सुनो जी मिथ्या-आहार से पेट का अजीर्ण होता है और मिथ्या-विहार से बुद्धि का; किन्तु महर्षि अग्निवेश ने कहा है कि इसमें रेचन ही गुणकारी होता है। (हँसता है)

जीवक : तुम दूसरे की तो कुछ सुनोगे नहीं ?

वसन्तक : सुना है कि धन्वंतरि के पास एक ऐसी पुड़िया थी कि बुढ़िया युवती हो जाय और दरिद्रता का केचुल छोड़कर मणिमयी बन जावे! क्या तुम्हारे पास भी—उहूँ ? तुम क्या जानो ?

जीवक : तुम्हारा तात्पर्य क्या है ? हम कुछ न समझ सके।

वसन्तक : केवल खलबट्टा चलाते रहे और मूर्खता का पुटपाक करते रहे। महाराज ने एक नयी दरिद्र कन्या से ब्याह कर लिया है, मिथ्या-विहार करते-करते उन्हें बुद्धि का अजीर्ण हो गया है। महादेवी वासवदत्ता और पद्मावती जीर्ण हो गयी हैं, तब कैसे मेल हो ? क्या तुम उन्हें अपनी औषधि से उन्हें विवाह करने के समय की अवस्था का नहीं बना सकते, जिसमें महाराज इस अजीर्ण से बच जायँ ?

जीवक : तुम्हारे ऐसे चाटुकार और भी चाट लगा देंगे, दो-चार और जुटा देंगे।

वसन्तक : उसमें तो गुरुजनों का ही अनुकरण है ! श्वसुर ने दो ब्याह किये, तो दामाद ने तीन। कुछ उन्नति ही रही।

जीवक : दोनों अपने कर्म के फल भोग रहे हैं। कहो, कोई यथार्थ बात भी कहने-सुनने की है या यही हँसोड़पन ?

वसन्तक : घबराइये मत। बड़ी रानी वासवदत्ता को सहोदरा भगिनी की तरह प्यार करती हैं। उनका कोई अनिष्ट नहीं होने पावेगा। उन्होंने ही मुझे भेजा है और प्रार्थना की है कि "आर्यपुत्र की अवस्था आप देख रहे हैं, उनके व्यवहार पर ध्यान न दीजियेगा। पद्मावती मेरी सहोदरा है, उसकी ओर से आप निश्चिन्त रहें। कोसल से समाचार भेजियेगा।" नमस्कार।

(हँसता हुआ जाता है)

जीवक : अच्छा, अब मैं भी कोसल जाऊँ।

(जाता है)



[श्रावस्ती की राजसभा में प्रसेनजित् सिंहासन पर, और अमात्य, अनुचरगण यथास्थान बैठे हैं]

प्रसेनजित् : क्या यह सब सच है ? सुदत्त, तुमने आज मुझे एक बड़ी आश्चर्यजनक बात सुनायी है। क्या सचमुच अजातशत्रु ने

अपने पिता को सिंहासन से उतारकर उनका तिरस्कार किया है ?

सुदत्त : पृथ्वीनाथ ! यह उतना ही सत्य है, जितना श्रीमान् का इस समय सिंहासन पर बैठना। मगध-नरेश से एक षड्-यन्त्र द्वारा सिंहासन छीन लिया गया है।

विरुद्धक : मैंने तो सुना है कि महाराज बिम्बिसार ने वानप्रस्थ-आश्रम स्वीकार किया है और उस अवस्था में युवराज का राज्य संभालना अच्छा ही है।

प्रसेनजित् : विरुद्धक ! क्या अजात की ऐसी परिपक्व अवस्था है कि मगध-नरेश उसे साम्राज्य का बोझ उठाने की आज्ञा दें ?

विरुद्धक : पिताजी ! यदि क्षमा हो तो मैं यह कहने में संकोच न करूंगा कि युवराज को राज्य-संचालन की शिक्षा देना महाराज का ही कर्त्तव्य है।

प्रसेनजित् : (उत्तेजित होकर)—और आज तुम दूसरे शब्दों में उसी शिक्षा के पाने का उद्योग कर रहे हो ! क्या राज्याधिकार ऐसे प्रलोभन की वस्तु है कि कर्त्तव्य और पितृभक्ति एक बार ही भुला दी जाय ?

विरुद्धक : पुत्र यदि पिता से अपना अधिकार माँगे, तो उसमें दोष ही क्या ?

प्रसेनजित् : (और भी उत्तेजित होकर) तब तू अवश्य ही नीच रक्त का मिश्रण है। उस दिन, जब तेरी ननिहाल में तेरे अपमानित होने की बात मैंने सुनी थी, मुझे विश्वास नहीं हुआ। अब मुझे विश्वास हो गया कि शाक्यों के कथनानुसार तेरी माता अवश्य ही दासी-पुत्री है। नहीं तो तू इस पवित्र कोसल की विश्व-विश्रुत गाथा पर पानी फेर कर अपने पिता के साथ उत्तर-प्रत्युत्तर न करता।

क्या इसी कोसल में रामचन्द्र और दशरथ के सदृश पुत्र और पिता अपना उदाहरण नहीं छोड़ गये हैं ?

सुदत्त : दयानिधे ! बालक का अपराध मार्जनीय है।

विरुद्धक : चुप रहो सुदत्त ! पिता कहे और पुत्र उसे सुने। तुम चाटुकारिता करके मुझे अपमानित न करो।

प्रसेनजित् : अपमान ! पिता से पुत्र का अपमान ! ! क्या यह विद्रोही युवक-हृदय, जो नीच रक्त से कलुषित है, युवराज होने के योग्य है ? क्या भेड़िये की तरह भयानक ऐसी दुराचारी सन्तान अपने माता-पिता का ही वध न करेगी ! अमात्य !

अमात्य : आज्ञा पृथ्वीनाथ !

प्रसेनजित् : (स्वगत) अभी से इनका गर्व तोड़ देना चाहिए। (प्रकट) आज से यह निर्भीक किन्तु अशिष्ट-बालक अपने युवराज पद से वञ्चित किया गया। और, इसकी माता का राज-महिषी का-सा सम्मान नहीं होगा—केवल जीविका-निर्वाह के लिए उसे राजकोष से व्यय मिला करेगा।

विरुद्धक : पिताजी, मैं न्याय चाहता हूँ।

प्रसेनजित् : अबोध, तू पिता से न्याय चाहता है ! यदि पक्ष निर्बल है और पुत्र अपराधी है, तो किस पिता ने पुत्र के लिए न्याय किया है ? परन्तु मैं यहां पिता नहीं राजा हूँ। तेरा बड़प्पन और महत्वाकांक्षा से पूर्ण हृदय अच्छी तरह कुचल दिया जायगा—बस चला जा।

(विरुद्धक सिर झुकाकर जाता है)

अमात्य : यदि अपराध क्षमा हो, तो कुछ प्रार्थना करूं। यह न्याय नहीं है। कोसल के राजदण्ड ने कभी ऐसी व्यवस्था नहीं दी। किसी दूसरे के पुत्र का कलङ्कित कर्म सुनकर श्रीमान् उत्तेजित हो अपने पुत्र को दण्ड दें, यह श्रीमान् की

प्रत्यक्ष निर्बलता है। क्या श्रीमान् उसे उचित शासक नहीं बनाना चाहते ?

प्रसेनजित् : चुप रहो मन्त्री, जो कहता हूँ वह करो।

(दौवारिक आता है)

दौवारिक : महाराज की जय हो ! मगध से जीवक आये हैं।

प्रसेनजित् : जाओ, लिवा लाओ।

(दौवारिक जाता है और जीवक को लिवा लाता है)

जीवक : जय हो कोसल-नरेश की !

प्रसेनजित् : कुशल तो है जीवक ? तुम्हारे महाराज की तो सब बातें हम सुन चुके हैं, उन्हें दुहराने की कोई आवश्यकता नहीं। हाँ, कोई नया समाचार हो तो कहो।

जीवक : दयालु देव, कोई नया समाचार नहीं है। अपमान की यंत्रणा ही महादेवी वासवी को दुखित कर रही है, और कुछ नहीं।

प्रसेनजित् : तुम लोगों ने तो राजकुमार को अच्छी शिक्षा दी। अस्तु, देवी वासवी को अपमान भोगने की आवश्यकता नहीं। उन्हें अपनी सपत्नी-पुत्र के भिक्षान्न पर जीवन निर्वाह नहीं करना होगा। मन्त्री ! काशी की प्रजा के नाम एक पत्र लिखो कि वह अजात को राज-कर न देकर वासवी को अपना कर दान करें, क्योंकि काशी का प्रान्त वासवी को मिला है, सपत्नी-पुत्र का उस पर कोई अधिकार नहीं है।

जीवक : महाराज ! देवी वासवी ने कुशल पूछा है और कहा है कि इस अवस्था में मैं आर्य-पुत्र को छोड़कर नहीं आ सकती, इसलिए भाई कुछ अन्यथा न समझें।

प्रसेनजित् : जीवक, तुम यह क्या कहते हो। कोसल-कुमारी दशरथ-नन्दिनी शान्ता का उदाहरण उसके सामने है; दरिद्र ऋषि के साथ जो दिव्य जीवन व्यतीत कर सकती थी। क्या वासवी किसी दूसरे कोसल की राजकुमारी है ? कुल-शील-पालन ही तो आर्य-ललनाओं का परमोज्ज्वल आभूषण है। स्त्रियों का वही मुख्य धन है। अच्छा जाओ, अब विश्राम करो।

(जीवक का प्रस्थान/सेनापति बन्धुल का प्रवेश)

बन्धुल : प्रबलप्रताप कोसल-नरेश की जय हो !

प्रसेनजित् : स्वागत सेनापते ! तुम्हारे मुख से 'जय' शब्द कितना सुहावना सुनाई पड़ता है ! कहो, क्या समाचार है ?

बन्धुल : सम्राट, कोसल की विजयिनी-पताका वीरों के रक्त में अपने अरुणोदय का तीव्र तेज दौड़ाती है और शत्रुओं को उसी रक्त में नहाने की सूचना देती है ! राजाधिराज ! हिमालय का सीमाप्रान्त बर्बर लिच्छवियों के रक्त से और भी ठण्डा कर दिया गया है। कोसल के प्रचण्ड नाम से ही शान्ति स्वयं पहरा दे रही है। यह सब श्रीचरणों का प्रताप है। अब विद्रोह का नाम भी नहीं है। विदेशी बर्बर शताब्दियों तक उधर देखने का भी साहस न करेंगे।

प्रसेनजित् : धन्य हो विजयी वीर ! कोसल तुम्हारे ऊपर गर्व करता है और आशीर्वादपूर्ण अभिनन्दन करता है। लो, यह विजय का स्मरण-चिह्न !···

(हार पहनाता है)

सब : जय, सेनापति बन्धुल की जय !

प्रसेनजित् : (चौंकते हुए) हैं ! जाओ, विश्राम करो।

(बन्धुल जाता है)



[प्रकोष्ठ में कुमार विरुद्धक एकाकी]

विरुद्धक : (आप-ही-आप)

घोर अपमान! अनादर की परकाष्ठा और तिरस्कार का भैरवनाद!! यह असहनीय है। धिक्कारपूर्ण कोसल-

दश की सीमा कभी की मेरी आँखों से दूर हो जाती; किन्तु मेरे जीवन का विकास-सूत्र एक बड़े कोमल कुसुम के साथ बँध गया है। हृदय नीरव अभिलाषाओं का नीड़ हो रहा है। जीवन के प्रभात का वह मनोहर स्वप्न, विश्व-भर की मदिरा बनकर मेरे उन्माद की सहकारिणी कोमल कल्पनाओं का भण्डार हो गया। मल्लिका ! तुम्हें मैंने अपने यौवन के पहले ग्रीष्म की अर्द्धरात्रि में आलोकपूर्ण नक्षत्रलोक से कोमल हीरक-कुसुम के रूप में आते देखा। विश्व के असङ्ख्य कोमल कण्ठों की रसीली तानें पुकार बनकर तुम्हारा अभिनन्दन करने, तुम्हें सँभालकर उतारने के लिये, नक्षत्रलोक को गयी थीं। शिशिरकणों से सिक्त पवन तुम्हारे उतरने की सीढ़ी बना था, उषा ने स्वागत किया, चाटुकार मलियानिल परिमल की इच्छा से परिचारक बन गया, और बरजोरी मल्लिका के एक कोमल वृन्त के आसन देकर तुम्हारी सेवा करने लगा। उसने खेलते-खेलते तुम्हें उस आसन से भी उठाया और गिराया। तुम्हारे धरणी पर आते ही जटिल जगत् की कुटिल गृहस्थी के आल-बाल में आश्चर्यपूर्ण सौन्दर्यमयी रमणी के रूप में तुम्हें सबने देखा। यह कैसा इन्द्रजाल था—प्रभाव का वह मनोहर स्वप्न था—सेनापति बन्धुल, एक हृदयहीन क्रूर सैनिक ने तुम्हें अपने उष्णीष का फूल बनाया। और, हम तुम्हें अपने घेरे में रखने के लिए कँटीली झाड़ी बनकर पड़े ही रहे ! कोसल के आज भी हम कण्टक-स्वरूप हैं....!

(कोसल की रानी का प्रवेश)

रानी : छिः राजकुमार ! इसी दुर्बल हृदय से तुम संसार में कुछ कर सकोगे। स्त्रियों की-सी रोदनशीला प्रकृति लेकर तुम कोसल के सम्राट बनोगे ?

विरुद्धक : माँ, क्या कहती हो !—हम आज एक तिरस्कृत युवकमात्र हैं, कहाँ का कोसल और कौन राजकुमार !

रानी : देखो, तुम मेरी सन्तान होकर मेरे सामने ऐसी नीच बात न कहो। दासी की पुत्री होकर भी मैं राजरानी बनी और हठ से मैंने इस पद को ग्रहण किया, और तुम राजा के पुत्र होकर इतने निस्तेज और डरपोक होगे, यह कभी मैंने स्वप्न में भी न सोचा था। बालक! मानव अपनी इच्छा-शक्ति और पौरुष से ही कुछ होता है। जन्मसिद्ध तो कोई भी अधिकार दूसरों के समर्थन का सहारा चाहता है। विश्व में छोटे से बड़ा होना, यही प्रत्यक्ष नियम है। तुम इसकी क्यों अवहेलना करते हो? महत्त्वाकांक्षा के प्रदीप्त अग्निकुण्ड में कूदने को प्रस्तुत हो जाओ, विरोधी शक्तियों का दमन करने के लिए कालस्वरूप बनो, साहस के साथ उनका सामना करो, फिर या तो तुम गिरोगे या वे भाग जायँगी। मल्लिका तो क्या, राजलक्ष्मी तुम्हारे पैरों पर लोटेगी। पुरुषार्थ करो! इस पृथ्वी पर जियो तो कुछ होकर जियो, नहीं तो मेरे दूध का अपमान कराने का तुम्हें अधिकार नहीं।

विरुद्धक : बस माँ! अब कुछ न कहो। आज से प्रतिशोध लेना मेरा कर्त्तव्य और जीवन का लक्ष्य होगा। माँ! मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि तेरे अपमान के कारण इन शाक्यों का एक बार अवश्य संहार करूँगा और उनके रक्त में नहाकर, कोसल के सिंहासन पर बैठकर, तेरी वन्दना करूँगा। आशीर्वाद दो कि इस क्रूर परिक्षा में उत्तीर्ण होऊँ।

रानी : (सिर पर हाथ फेर कर)

मेरे बच्चे, ऐसा ही हो।

(दोनों जाते हैं।)



[पद्मावती वीणा बजाना चाहती है, कई बार प्रयास करने पर भी नहीं सफल होती।]

पद्मावती : जब भीतर की तन्त्री बेकल है तब यह कैसे बजे ! मेरे स्वामी ! मेरे नाथ ! यह कैसा भाव है प्रभु !

(फिर वीणा उठाती है और रख देती है, गाने लगती है)

मीड़ मत खिंचे बीन के तार।

निर्दय उँगली ! अरी ठहर जा,
पल-भर अनुकम्पा से भर जा,
यह मूच्छित मूर्च्छना आह-सी
निकलेगी निस्सार।

छेड़-छेड़कर मूक तन्त्र को,
विचलित कर मधु मौन मन्त्र को—
बिखरा दे मत, शून्य पवन में
लय हो स्वर-संसार।

मसल उठेगी सकरुण वीणा,
किसी हृदय को होगी पीड़ा,
नृत्य करेगी नग्न विकलता
परदे के उस पार।

पद्मावती : (आप ही आप)—यह सौभाग्य ही है कि भगवान् गौतम आ गये हैं, अन्यथा पिता की दुरावस्था सोचते-सोचते तो मेरी बुरी अवस्था हो गयी थी। महाश्रमण की अमोघ सान्त्वना मुझे धैर्य देती है; किन्तु मैं यह क्या सुन रही हूँ—स्वामी मुझसे असन्तुष्ट हैं। भला यह वेदना मुझसे कैसे सही जायेगी ! कई बार दासी गयी; किन्तु वहाँ तो तेवर ही ऐसे हैं कि किसी को अनुनय-विनय करने का साहस ही नहीं होता। फिर भी कोई चिन्ता नहीं, राजभक्त प्रजा को विद्रोही होने का भय ही क्यों हो ?

हमारा प्रेमनिधी सुन्दर सरल है।
अमृतमय है, नहीं इसमें गरल है॥

(नेपथ्य से—"भगवान् बुद्ध की जय हो")

पद्मावती : अहा ! संघ-सहित करुणानिधान जा रहे हैं, दर्शन तो करूँ ।

(खिड़की से देखती है/उदयन का प्रवेश)

उदयन : (क्रोध से)—पापीयसी, देख ले, यह तेरे हृदय का विष—तेरी वासना का निष्कर्ष जा रहा है । इसलिए न यह नया झरोखा बना है ।

पद्मावती : (चौंककर खड़ी हो जाती है; हाथ जोड़कर)—प्रभु ! स्वामी ! क्षमा हो ! यह मूर्ति मेरी वासना का विष नहीं है किन्तु अमृत है, नाथ ! जिसके रूप पर आपकी भी असीम भक्ति है, उसी रमणी-रत्न मागंधी का भी जिन्होंने तिरस्कार किया था—शान्ति के सहचर, करुणा के स्वामी—उन बुद्ध को, मांस-पिण्डों की कभी आवश्यकता नहीं ।

उदयन : किन्तु मेरे प्राणों की है । क्यों, इसलिए न वीणा में साँप का बच्चा छिपाकर भेजा था ! तू मगध क राजकुमारी है, प्रभुत्व का विष जो तेरे रक्त में घुसा है, वह कितनी ही हत्यायें कर सकता है । दुराचारिणी ! तेरो छलना का दांव मुझ पर नहीं चला —अब तेरा अन्त है, सावधान !

(तलवार निकालता है)

पद्मावती : मैं कौशाम्बी-नरेश की राजभक्त प्रजा हूँ । स्वामी, किसी छलना का आपके मन पर अधिकार हो गया है । वह कलङ्क मेरे सिर पर हो सही, विचारक दृष्टि में यदि मैं अपराधिनी हूं, तो दण्ड भी मुझे स्वीकार है, और वह दण्ड, वह शान्ति-दायक दण्ड यदि स्वामी के कर-कमलों से मिले, तो मेरा सौभाग्य है । प्रभु ! पाप का सब दण्ड ग्रहण कर लेने से वही पुण्य हो जाता है ।

(सिर झुकाकर घुटने टेकती है ।)

उदयन : पापीयसी । तेरी वाणी का घुमाव-फिराव मुझे अपनी ओर नहीं आकर्षित करेगा । दुष्टे ! इस हलाहल से भरे हुए हृदय को निकालना ही होगा । प्रार्थना कर ले ।

पद्मावती : मेरे नाथ । इस जन्म के सर्वस्व । और परजन्म के स्वर्ग । तुम्हीं मेरी गति हो और तुम्हीं मेरे ध्येय हो, जब तुम्हीं समक्ष हो तो प्रार्थना किसकी करूँ ? मैं प्रस्तुत हूँ ।

(तलवार उठाता है, इसी समय वासवदत्ता प्रवेश करती है)

वासवदत्ता : ठहरिये ! मागंधी की दासी नवीना आ रही है, जिसने सब अपराध स्वीकार किया है । आपको मेरे इस राजमन्दिर की सीमा के भीतर, इस तरह, हत्या करने का अधिकार नहीं है । मैं इसका विचार करूँगी और प्रमाणित कर दूँगी कि अपराधी कोई दूसरा है । वाह ! इसी बुद्धि पर आप राज्य-शासन कर रहे हैं ? कौन है जी ? बुलाओ मागंधी और नवीना को ।

दासी : महादेवी की जो आज्ञा । (जाती है)

उदयन : देवी ! मेरा तो हाथ ही नहीं उठाता—हैं, यह क्या माया है ?

वासवदत्ता : आर्यपुत्र ! यही सती का तेज है, सत्य का शासन है, हृदय-हीन मद्यप का प्रलाप नहीं । देवी पद्मावती ! तू पति के अपराधों को क्षमा कर ।

पद्मावती : (उठकर)—भगवान् यह क्या ! मेरे स्वामी ! मेरा अप-राध क्षमा हो—नसें चढ़ गयी होंगी ।

(हाथ सीधा करती है)

दासी : (प्रवेश करके)—महाराज, भागिये ! महादेवी, हटिये वह देखिये आग की लपट इधर ही चली आ रही है । नयी महारानी के महल में आग लगी है, और उसका पता नहीं है ! नवीना मरती हुई कह रही थी कि मागंधी स्वयं मरी और मुझे भी उसने मार डाला; वह महाराज का सामना नहीं करना चाहती थी ।

उदयन : क्या ? षड्यन्त्र ! अरे, क्या मैं पागल हो गया था ! देवी अपराध क्षमा हो ।

(पद्मावती के सामने घुटने टेकता है)

पद्मावती : उठिये, उठिये महाराज ! दासी को लज्जित न कीजिये ।

वासवदत्ता : यह प्रणय लीला दूसरी जगह होगी—चलो हटो, यह देखो लपट फैल रही है ।

(वासवदत्ता दोनों का हाथ पकड़कर खींचकर खड़ी हो जाती है । पर्दा हटता है—मागंधी के महल में आग लगी हुई दिखाई पड़ती है)

पटाक्षेप

द्वितीय अंक



[मगध की राजसभा में अजातशत्रु]

अजातशत्रु : यह क्या सच है समुद्र ! मैं यह क्या सुन रहा हूँ ! प्रजा भी ऐसा कहने का साहस कर सकती है ? चींटी भी पंख लगाकर बाज के साथ उड़ना चाहती है ! 'राज-कर मैं न

दूँगा'—यह बात जिस जिह्वा से निकली, बात के साथ ही वह भी क्यों न निकाल ली गयी ? काशी का दण्डनायक कौन मूर्ख है ? तुमने उसी समय उसे बन्दी क्यों नहीं किया ?

समुद्रदत्त : देव ! मेरा कोई अपराध नहीं। काशी में बड़ा उपद्रव मचा था। शैलेन्द्र नामक विकट डाकू के आतङ्क से लोग पीड़ित थे। दण्डनायक ने मुझसे कहा कि काशी के नागरिक कहते हैं कि हम कोसल की प्रजा हैं, और ।

अजातशत्रु : कहो, कहो रुकते क्यों हो ?

समुद्रदत्त : और हम लोग उस अत्याचारी राजा को कर न देंगे जो अधर्म के बल से पिता के जीते ही सिंहासन छीनकर बैठ गया है। और, जो पीड़ित प्रजा की रक्षा भी नहीं कर सकता—उनके दुःखों को नहीं सुनता तथा····।

अजातशत्रु : हाँ-हाँ, कहो, सङ्कोच न करो।

समुद्रदत्त : सम्राट् ! इसी तरह की बहुत-सी बातें वे कहते हैं, उन्हें सुनने से कोई लाभ नहीं। अब, जो आज्ञा दीजिये वह किया जाय।

अजातशत्रु : ओह ! अब समझ में आया। यह काशी की प्रजा का कण्ठ नहीं, इसमें हमारी विमाता का व्यंग्य-स्वर है। इसका प्रतिकार आवश्यक है। इस प्रकार अजातशत्रु को कोई अपदस्थ नहीं कर सकता।

(कुछ सोचता है)

दौवारिक : (प्रवेश करके)—जय हो, आर्य देवदत्त आ रहे हैं।

(देवदत्त का प्रवेश)

देवदत्त : सम्राट् कल्याण हो, धर्म की वृद्धि हो, शासन सुखद हो !

अजातशत्रु : नमस्कार भगवान् ! आपकी कृपा से सब कुछ होगा और यह उसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि आवश्यकता के समय आप पुकारे हुए देवता की तरह आ जाते हैं।

देवदत्त : (बैठता हुआ)—आवश्यकता कैसी ? राजन् ! आपको कमी क्या है, और हम लोगों के पास आशीर्वाद के अतिरिक्त और धरा ही क्या है ? फिर भी सुनूँ—

अजातशत्रु : कोसल के दाँत जम रहे हैं। वह काशी की प्रजा में विद्रोह करना चाहता है। वहाँ के लोग राजस्व देना अस्वीकार करते हैं।

देवदत्त : पाखण्डी गौतम आजकल उसी ओर घूम रहा है, इसीलिए। कोई चिन्ता नहीं। गौतम की कोई चाल नहीं लगेगी। यदि मुनिव्रत धारण करके भी वह ऐसे साम्राज्य के षड्यन्त्रों में लिप्त है, तो मैं भी हठवश उसका प्रतिद्वन्द्वी बनूँगा। परिषद् का आह्वान करो।

अजातशत्रु : जैसी आज्ञा—(दौवारिक से)—जाओ जी, परिषद् के सभ्यों को बुला लाओ।

(दौवारिक जाता है, फिर प्रवेश)

दौवारक : दौवारिक सम्राट् की जय हो! कोसल से कोई गुप्त अनुचर आया है और दर्शन की इच्छा प्रकट करता है।

देवदत्त : उसे लिवा लाओ।

(दौवारिक जाकर लिवा लाता है)

दूत : मगध-सम्राट् की जय हो! कुमार विरुद्धक ने यह पत्र श्रीमान् की सेवा में भेजा है।

(पत्र देता है, अजातशत्रु पत्र पढ़कर देवदत्त को दे देता है)

देवदत्त : (पढ़कर)—वाह, कैसा सुयोग! हम लोग क्यों न सहमत होंगे! दूत, तुम्हें शीघ्र पुरस्कार और पत्र मिलेगा—जाओ, विश्राम करो।

(दूत जाता है)

अजातशत्रु : गुरुदेव, बड़ी अनुकूल घटना है! मगध जैसा परिवर्तन कर चुका है, वही तो कोसल भी चाहता है। हम नहीं समझते कि बुड्ढों को क्या पड़ी है और उन्हें सिंहासन का कितना लोभ है। क्या यह पुरानी नियन्त्रण में बँधी हुई, संसार के कीचड़ में निमज्जित राजतन्त्र की पद्धति, नवीन उद्योग को असफल कर देगी? तिल-भर भी जो अपने पुराने विचारों से हटना नहीं चाहता, उसे अवश्य नष्ट हो जाना चाहिए, क्योंकि यह जगत् गतिशील है।

देवदत्त : अधिकार, चाहे वे कैसे भी जर्जर और हल्की नीव के हों, अथवा अन्याय ही से क्यों न संगठित हों, सहज में नहीं

छोड़ जा सकते। भद्रजन उन्हें विचार से काम में लाते हैं और हठी तथा दुराग्रही उनमें तब तक परिवर्तन भी नहीं करना चाहते, जब तक वे एक बार ही न हटा दिये जायँ।

दौवारिक : (प्रवेश करके)—जय हो देव! महामान्य परिषद् के सभ्यगण आये हैं।

देवदत्त : उन्हें लिवा आओ।

(दौवारिक जाकर लिवा लाता है)

परिषद्गण : सम्राट् की जय हो! (महात्मा को अभिवादन करते हैं।)

देवदत्त : राष्ट्र का कल्याण हो! राजा और परिषद् की श्री-वृद्धि हो!

(सब बैठते हैं)

परिषद्गण : क्या आज्ञा है?

अजातशत्रु : आप लोग राष्ट्र के शुभचिन्तक हैं। जब पिताजी ने यह प्रकाण्ड बोझ मेरे सिर पर रख दिया और मैंने इसे ग्रहण किया, तब इसे भी मैंने किशोर जीवन का एक कौतुक ही समझा था। किन्तु बात वैसी नहीं थी! मान्य महोदयो, राष्ट्र में एक ऐसी गुप्त-शक्ति का कार्य खुले हाथों चल रहा है, जो इस शक्तिशाली मगध-राष्ट्र को उन्नत नहीं देखना चाहती। और मैंने केवल इस बोझ को आप लोगों की शुभेच्छा का सहारा पाकर लिया था। आप लोग बताइये कि उस शक्ति का दमन आप लोगों को अभीष्ट है कि नहीं? या अपने राष्ट्र और सम्राट् को आप लोग अपमानित करना चाहते हैं?

परिषद् : कभी नहीं। मगध का राष्ट्र सदैव गर्व से उन्नत रहेगा और विरोधी शक्ति पददलित होगी।

देवदत्त : कुछ मैं भी कहना चाहता हूँ। इस समय जब मगध का राष्ट्र अपने यौवन में पैर रख रहा है, तब विद्रोह की आवश्यकता नहीं, राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को उसकी उन्नति सोचनी चाहिए। राजकुल के कौटुम्बिक झगड़ों से और राष्ट्र से कोई ऐसा सम्बन्ध नहीं कि उनके पक्षपाती होकर हम अपने देश की और जाति की दुर्दशा करावें। सम्राट् की विमाता बार-बार विप्लव की सूचना दे रही हैं। यद्यपि

महामान्य सम्राट् बिम्बिसार ने अपने सब अधिकार अपनी सुयोग्य संतान को दे दिये हैं, फिर भी ऐसी दुष्चेष्टा क्यों की जा रही है? काशी, जो कि बहुत दिनों से मगध का एक सम्पन्न प्रान्त रहा है, वासवी देवी के षड्यन्त्र से राजस्व देना अस्वीकार करता है। वह कहता है कि मैं कोसल का दिया हुआ वासवी देवी का रक्षित धन हूँ। क्या ऐसे सुरम्य और धनी प्रदेश को मगध छोड़ देने को प्रस्तुत है? क्या फिर इसी तरह और प्रदेश भी स्वतन्त्र होने की चेष्टा न करेंगे? क्या इसी में राष्ट्र का कल्याण है?

सब : कभी नहीं, कभी नहीं। ऐसा कदापि न होने पावेगा।

अजातशत्रु : तब आप लोग मेरा साथ देने के लिए पूर्ण रूप से प्रस्तुत हैं? देश को अपमान से बचाना चाहते हैं?

सब : अवश्य! राष्ट्र के कल्याण के लिए प्राण तक विसर्जन किया जा सकता है, और हम सब ऐसी प्रतिज्ञा करते हैं।

देवदत्त : तथास्तु! क्या इसके लिए कोई नीति आप लोग निर्धारित करेंगे?

एक सभ्य : मेरी विनीत सम्मति है कि आप ही इस परिषद् के प्रधान बनें और नवीन सम्राट् को अपनी स्वतन्त्र सम्मति देकर राष्ट्र का कल्याण करें, क्योंकि आप सदृश महात्मा सर्वलोक के हित की कामना रखते हैं। राष्ट्र का उद्धार करना भी भारी परोपकार है।

अजातशत्रु : यह मुझे भी स्वीकार है।

देवदत्त : मेरी सम्मति है कि साम्राज्य का सैनिक अधिकार स्वयं लेकर सेनापति के रूप में कोसल के साथ युद्ध और उसका दमन करने के लिए अजातशत्रु को अग्रसर होना चाहिए। समुद्रदत्त गुप्त-प्रणिधि बनकर काशी जावें और प्रजा को मगध के अनुकूल बनावें, तथा शासन-भार परिषद् अपने सिर पर लें।

दूसरा सभ्य : यदि सम्राट् बिम्बिसार इसमें अपमान समझें?

देवदत्त : जिसने राज्य अपने हाथ से छोड़कर स्त्री की वश्यता स्वीकार कर ली, उसे इसका ध्यान भी नहीं हो सकता। फिर भी उनके समस्त व्यवहार वासवी देवी की अनुमति से होंगे— (सोचकर) – और भी एक बात है, मैं भूल गया था, वह यह कि कार्य को उत्तम रूप से चलाने के लिए महादेवी छलना परिषद् की देख-रेख किया करें।

समुद्रदत्त : यदि आज्ञा हो, तो मैं भी कुछ कहूँ।

परिषद : हाँ-हाँ, अवश्य।

समुद्रदत्त : यह एक भी सफल नहीं होगा, जब तक वासवी देवी के हाथ-पैर चलते रहेंगे। यदि आप लोग राष्ट्र का निश्चित कल्याण चाहते हैं, तो पहले इसका प्रबन्ध करें।

देवदत्त : तुम्हारा तात्पर्य क्या है ?

समुद्रदत्त : यही कि वासवी देवी को महाराज बिम्बिसार से अलग तो किया नहीं जा सकता—फिर भी आवश्यकता से बाध्य होकर उस उपवन की रक्षा पूर्ण रूप से होनी चाहिए।

तीसरा सभ्य : क्या महाराज बन्दी बनाने जायँगे ? मैं ऐसी मन्त्रणा का विरोध करता हूँ। यह अनर्थ है ! अन्याय है !

देवदत्त : ठहरिये अपनी प्रतिज्ञा को स्मरण कीजिये और विषय के गौरव को मत भुला दीजिये। समुद्रदत्त सम्राट् बिम्बिसार को बन्दी नहीं बनाना चाहता, किन्तु नियन्त्रण चाहता है, सो भी किस पर, केवल वासवी देवी पर, जो कि मगध की गुप्त शत्रु है। इसका और कोई दूसरा सरल उपाय नहीं। यह किसी पर प्रकट करके सम्राट् का निरादर न किया जाय, किन्तु युद्धकाल की राज-मर्यादा कहकर अपना काम निकाला जाय, क्योंकि ऐसे समय में राजकुल की विशेष रक्षा होनी चाहिए।

तीसरा सभ्य : तब मेरा कोई विरोध नहीं।

अजातशत्रु : फिर, आप लोग आज की इस मन्त्रणा से सहमत हैं ?

सब : हम सबको स्वीकार है।

अजातशत्रु : तथास्तु। **(सब जाते हैं)**



[मार्ग में बन्धुल]

बन्धुल : (स्वगत)—इस अभिमानी राजकुमार से तो मिलने की इच्छा भी नहीं थी, किन्तु क्या करूँ, उसे अस्वीकार भी

नहीं कर सका। कोसल-नरेश ने जो मुझे काशी का सामन्त बनाया है, वह मुझे अच्छा नहीं लगता, किन्तु राजा की आज्ञा। मुझे तो सरल और सैनिक जीवन ही रुचिकर है। यह सामन्त का आडम्बरपूर्ण पद कहटाचरण की सूचना देता है। महाराज प्रसेनजित् ने कहा कि 'शीघ्र ही मगध काशी पर अधिकार करना चाहेगा, इसलिए तुम्हारा वहाँ जाना आवश्यक है।' यहाँ का दण्डनायक तो मुझसे प्रसन्न है। अच्छा देखा जायगा—(टहलता है)—यह समझ में नहीं आता कि एकान्त में कुमार मुझसे क्यों मिलना चाहता है!

(विरुद्धक का प्रवेश)

विरुद्धक : सेनापते! कुशल तो है?

बन्धुल : कुमार की जय हो! क्या आज्ञा है? आप क्यों अकेले हैं?

विरुद्धक : मित्र बन्धुल! मैं तो तिरस्कृत राज-संतान हूँ। फिर अपमान सहकर, चाहे वह पिता का सिंहासन क्यों न हो, मुझे रुचिकर नहीं।

बन्धुल : राजकुमार! आपको सम्राट् ने निर्वासित तो नहीं किया, फिर आप क्यों इस तरह अकेले घूमते हैं? चलिये—काशी का सिंहासन आपको मैं दिला सकता हूँ।

विरुद्धक : नहीं बंधुल! मैं दया से दिया हुआ दान नहीं चाहता, मुझे तो अधिकार चाहिए, स्वत्त्व चाहिये!

बन्धुल : फिर आप क्या करेंगे?

विरुद्धक : जो कर रहा हूँ।

बन्धुल : वह क्या?

विरुद्धक : मैं बाहुबल से उपार्जन करूँगा। मृगया करूंगा। क्षत्रिय-कुमार हूं। चिंता क्या है? स्पष्ट कहता हूं बन्धुल, मैं

साहसिक हो गया हूं। अब वही मेरी वृत्ति है। राज्य-स्थापन के पहले मगध के भूपाल भी तो यही किया करते थे !

बन्धुल : सावधान ! राजकुमार ! ऐसी—दुराचार की बात न सोचिये। यदि आप इस पथ से नहीं लौटते, तब मेरा भी कर्त्तव्य होगा, जो आपके लिये बड़ा कठोर होगा। आतंक का दमन करना प्रत्येक राजपुरुष का कर्म है, यह युवराज को भी मानना पड़ेगा।

विरुद्धक : मित्र बन्धुल ! तुम बड़े सरल हो। जब तुम्हारी सीमा के भीतर कोई उपद्रव हो, तो मुझे इसी तरह आह्वान कर सकते हो, किंतु—इस समय तो मैं एक दूसरी—तुम्हारे शुभ का बात कहने आया हूं। कुछ समझते हो कि तुमको काशी का सामन्त बनाकर क्या भेजा गया है ?

बन्धुल : यह तो बड़ी सीधी बात है—कोसल-नरेश इस राज्य को हस्तगत करना चाहते हैं, मगध भी उत्तेजित है, युद्ध की सभावना है; इसलिए मैं यहाँ भेजा गया हूं। मेरी वीरता पर कोसल को विश्वास है।

विरुद्धक : क्या ही अच्छा होता कि कोसल तुम्हारी बुद्धि पर भी अभिमान कर सकता, किन्तु बात कुछ दूसरी ही है।

बन्धुल : वह क्या ?

विरुद्धक : कोसल-नरेश को तुम्हारी वीरता से संतोष नहीं; किन्तु आतंक है। राजशक्ति किसी को भी इतना उन्नत नहीं देखना चाहती।

बन्धुल : फिर सामन्त बनाकर मेरा सम्मान क्यों किया गया ?

विरुद्धक : यह एक षड्यन्त्र है—जिसमे तुम्हारा अस्तित्व न रह जाय।

बन्धुल : विद्रोही राजकुमार ! मैं तुम्हे बंदा बनाता हूं—सावधान हो !

(पकड़ना चाहता है)

विरुद्धक : अपनी चिंता करो—मैं 'शैलेन्द्र' हूं।

(विरुद्धक तलवार खींचता हुआ निकल जाता है/बंधुल भी चकित होकर चला जाता है/श्यामा का प्रवेश)

श्यामा : (स्वगत)—रात्रि चाहे कितनी भयानक हो—किंतु प्रेम-मयी रमणी के हृदय से भयानक वह कदापि नहीं हो सकती ! यह देखो, पवन मानो किसी डर से धीरे-धीरे साँस ले रहा है—किसी आतंक से पक्षिवृन्द अपने घोंसलों में जाकर छिप गये हैं। आकाश में ताराओं का झुण्ड नीरव-सा है, जैसे कोई भयानक बात देखकर वे भी बोल नहीं सकते—केवल आपस में इंगित कर रहे हैं ! संसार किसी भयानक समस्या में निमग्न-सा प्रतीत होता है ! किंतु मैं शैलेंद्र से मिलने आयी हूँ—वह डाकू है तो क्या, मेरी भी अतृप्त वासना है। मागधी ! चुप, वह नाम क्यों लेती है। मागंधी कौशाम्बी के महल में आग लगाकर जल मरी—अब तो मैं श्यामा, काशी की प्रसिद्ध वार-विलासिनी हूँ। बड़े-बड़े राजपुरुष और श्रेष्ठि इसी चरण को छूकर अपने को धन्य समझते हैं। धन की कमी नहीं, मान का कुछ ठिकाना नहीं; राजरानी होकर और क्या मिलता था, केवल सापत्न्य ज्वाला की पीड़ा !

(विरुद्धक का प्रवेश)

विरुद्धक : रमणी ! तुम इस घोर कानन में क्यों आई हो ?

श्यामा : शैलेंद्र, क्या यह तुम्हें यह बताना होगा ! मेरे हृदय में जो ज्वाला उठ रही है, उसे अब तुम्हारे अतिरिक्त कौन बुझावेगा ? तुम स्नेह की परीक्षा चाहते थे—बोलो, तुम कैसी परीक्षा चाहते हो ?

विरुद्धक : श्यामा, मैं डाकू हूँ। यदि तुमको इसी समय मार डालूँ !

श्यामा : तुम्हारे डाकूपन का ही विश्वास करके आई हूँ। यदि साधारण मनुष्य समझती—जो ऊपर से बहुत सीधा-सादा बनता है—तो मैं कदापि यहाँ आने का साहस न करती। शैलेंद्र, लो यह अपनी नुकीली कटार—इस तड़पते हुए कलेजे में भोंक दो !

(घुटने के बल बैठ जाती है)

विरुद्धक : किंतु श्यामा ! विश्वास करने वाले के साथ डाकू भी ऐसा नहीं करते, उनका भी एक सिद्धांत होता है। तुमसे मिलने में इसलिए मैं डरता था कि तुम रमणी हो और वह भी वार-विलासिनी ! मेरा विश्वास है कि ऐसी रमणियाँ डाकुओं से भी भयानक हैं।

श्यामा : तो क्या अभी तक तुम्हें मेरा विश्वास नहीं ? क्या तुम मनुष्य नहीं हो, आंतरिक प्रेम की शीतलता ने तुम्हें कभी स्पर्श नहीं किया ? क्या मेरी प्रणय-शिक्षा असफल होगी ? जीवन की कृत्रिमता में दिन-रात प्रेम का बनिज करते-करते क्या प्राकृतिक स्नेह का स्रोत एक बार ही सूख जाता है ? क्या वार-विलासिनी प्रेम करना नहीं जानती ? क्या कठोर और क्रूर कर्म करते-करते तुम्हारे हृदय में चेतना-लोक की गुदगुदी और कोमल स्पंदन नाम को भी अवशिष्ट नहीं है ? क्या तुम्हारा हृदय केवल एक मांसपिंड है ? जिसमें रक्त का संचार नहीं ? नहीं-नहीं, ऐसा नहीं, प्रियतम—

(हाथ पकड़कर गाती है)

बहुत छिपाया, उफन पड़ा अब, सँभालने का समय नहीं है।
अखिल विश्व में सतेज फैला, अनल हुआ यह प्रणय नहीं है ।।

कहीं तड़प कर गिरे न बिजली, कहीं न वर्षा हो कालिमा की।
तुम्हें न पाकर शशांक मेरे, बना शून्य यह हृदय नहीं है ।।

तड़प रही है कहीं कोकिला, कहीं पपीहा पुकारता है।
यही विरुद क्या तुम्हें सुहाता, कि नील नीरद सदय नहीं है ।।

जली दीप-मालिका प्राण की, हृदय-कुटी स्वच्छ हो गयी है।
पलक-पांवड़े बिछा चुकी हूँ, न दूसरा और, भय नहीं है ।।

चपल निकल कर कहाँ चले अब, इसे कुचल दो मृदुल चरण से।
कि आह निकले दबे हृदय से, भला कहो, यह विजय नहीं है ?

(दोनों हाथ-में-हाथ मिलाये जाते हैं)



[उपवन में मल्लिका और शक्तिमती (महामाया)]

मल्लिका : वीर-हृदय युद्ध का नाम ही सुनकर ही नाच उठता है। शक्तिशाली भुजदंड फड़कने लगते हैं। भला मेरे रोकने से

वे रुक सकते थे। कठोर कर्मपथ में अपने स्वामी के पैर का कंटक भी मैं नहीं होना चाहती। वह मेरे अनुराग, सुहाग की वस्तु है। फिर भी उनका कोई स्वतंत्र अस्तित्व है, जो हमारी शृंगार-मंजूषा में बंद करके नहीं रखा जा सकता। महान् हृदय को केवल विलास की मदिरा पिलाकर मोह लेना ही कर्त्तव्य नहीं है।

शक्तिमती : मल्लिका--तेरा कहना ठीक है किंतु फिर भी····।

मल्लिका : किंतु-परंतु नहीं। वे तलवार की धार हैं, अग्नि की भयानक ज्वाला हैं, और वीरता के वरेण्य दूत हैं। मुझे विश्वास है कि सम्मुख युद्ध में शक्र भी उनके प्रचंड आघातों को रोकने में असमर्थ है। रानो! एक दिन मैंने कहा कि 'मैं पावा के अमृतसर का जल पीकर स्वस्थ होना चाहती हूँ, पर वह सरोवर पाँच सौ प्रधान मल्लों से सदैव रक्षित रहता है। दूसरी जाति का कोई भी उसमें जल नहीं पीने पाता!' उसी दिन स्वामी ने कहा कि 'तभी तो तुम्हें वह जल अच्छी तरह पिला सकूँगा।'

शक्तिमती : फिर क्या हुआ?

मल्लिका : रथ पर अकेले मुझे लेकर वहीं चले। उस दिन मेरा परम सौभाग्य था, सारी मल्लजाति की स्त्रियाँ मुझ पर ईर्ष्या करती थीं—जब मैं अकेली रथ पर बैठी थी। मेरे वीर स्वामी ने उन पाँच सौ मल्लों से अकेले युद्ध आरम्भ किया और मुझे आज्ञा दी—'तुम निर्भय होकर जाओ, सरोवर में स्नान करो या जल पी लो।'

शक्तिमती : उस युद्ध में क्या हुआ?

मल्लिका : वैसी बाण-विद्या पांडवों की कहानी में मैंने सुनी थी। देखा, उनके धनुष कटे थे और कमरबंद के बन्धन से ही वे चल सकते थे। जब वे समीप आकर खड्ग-युद्ध में आह्वान करने लगे, तब स्वामी ने कहा—'पहले अपने शरीर की अवस्था को देखो, मैं अर्द्धमृतक घायलों पर अस्त्र नहीं चलाता।' फिर उन्होंने ललकार कर कहा—'वीर मल्लगण, जाओ, अस्त्रवैद्य से अपनी चिकित्सा कराओ, बीच में जो अपनी कमरबंद खोलेगा, उसकी मृत्यु निश्चित है।' मल्ल-महिलाओं की ईर्ष्या और उस सरोवर का जल स्वेच्छा से पान कर मैं कोसल लौट आई।



[काशी में श्यामा अपने गृह में बैठी है]

श्यामा : (स्वगत) शैलेंद्र ! यह तुमने क्या किया—मेरी प्रणयलता पर कैसा वज्रपात किया ! अभागे बंधुल को ही क्या पड़ी

था कि उसने द्वंद्वयुद्ध का आह्वान स्वीकार कर लिया ! कोसल का प्रधान सेनापति छल से मारा गया है और उसी के हाथ से घायल होकर तुम भी बंदी हुए। प्रिय शैलेंद्र ! तुम्हें किस तरह बचाऊँ (सोचती है)

समुद्रदत्त : (प्रवेश करके) श्यामा ! तुम्हारे रूप की प्रशंसा सुनकर यहाँ चले आने का साहस हुआ है। क्या मैंने कुछ अनुचित किया !

श्यामा : (देखती हुई)–नहीं श्रीमान्, यह तो आपका घर है। श्यामा आतिथ्य-धर्म को भूल नहीं सकती– यह कुटीर आपकी सेवा के लिए सदैव प्रस्तुत है। संभवत: आप परदेसी हैं और इस नगर में नवागत व्यक्ति हैं। बैठिये—क्या आज्ञा है ?

समुद्रदत्त : (बैठता हुआ)—हाँ सुंदरी, मैं नवागत व्यक्ति हूँ, किंतु एक बार और आ चुका हूँ–तभी तुम्हारे रूप की ज्वाला ने मुझे पतंग बनाया था, अब उसमें जलने के लिए आया हूँ। भला इतनी-सी कृपा होगी ?

श्यामा : मैं आपसे विनती करती हूँ कि पहले आप ठंडे होइये और कुछ थकावट मिटाइये, फिर बातें होंगी। विजया ! श्रीमान् को विश्रामगृह में लिवा जा।

(विजया आती है और समुद्रदत्त को लिवा जाती है/एक दासी का प्रवेश)

दासी : स्वामिनी ! दण्डनायक ने कहा है कि श्यामा की आज्ञा ही मेरे लिए सब कुछ है। हजार मोहरों की आवश्यकता नहीं, केवल एक मनुष्य उसके स्थान पर चाहिये, क्योंकि सेनापति की हत्या हो गयी है, और यह बात भी छिपी नहीं है कि शैलेंद्र पकड़ा गया है। तब, उसका कोई प्रतिनिधि चाहिये, जो रातोंरात सूली पर चढ़ा दिया जाय। अभी किसी ने उसे पहचाना भी नहीं है।

श्यामा : अच्छा, सुन चुकी। जा, शीघ्र संगीत का सम्भार ठीक कर, एक बड़े सम्भ्रांत सज्जन आये हैं शीघ्र जा, देर न कर—

(दासी जाती है/स्वगत)—स्वर्ण-पिंजर में भी श्यामा को क्या वह सुख मिलेगा—जो उसे हरी डालों पर कसैले फलों को चखने में मिलता है ? मुक्त नील गगन में अपने छोटे-छोटे पंख फैलाकर जब वह उड़ती है, तब जैसी उसकी सुरीली तान होती है, उसके सामने तो सोने के पिंजड़े में उसका गान क्रंदन ही है। मैं उसी श्यामा की तरह, जो स्वतंत्र है, राजमहल की परतंत्रता से बाहर आयी हूँ। हँसूँगी और हँसाऊँगी, रोऊँगी और रुलाऊँगी ! फूल की तरह आयी हूँ—परिमल की तरह चली जाऊँगी। स्वप्न की चंद्रिका में मलयानिल की सेज पर खेलूँगी। फूलों कि धूल से अंगराग बनाऊँगी, चाहे उसमें जितनी ही कलियाँ क्यों न कुचलनी पड़ें ! चाहे कितनों के प्राण जायँ, मुझे कुछ चिंता नहीं ! कुम्हला कर, फूलों को कुचल देने में ही सुख है।

(समुद्रदत्त का प्रवेश)

श्यामा : (खड़ी होकर)—कोई कष्ट तो नहीं हुआ ? दासियाँ दुर्विनीत होती हैं, क्षमा कीजियेगा।

समुद्रदत्त : सुंदरियों की तुम महारानी हो और तुम वास्तव में उसी तरह रहती भी हो; तब, जैसा गृहस्थ होगा वैसे आतिथ्य की भी संभावना है—बड़ा सुख मिला, हृदय शीतल हो गया।

श्यामा : आप तो मेरी प्रशंसा करके मुझे बार-बार लज्जित करते हैं।

समुद्रदत्त : सुंदरी ! मैं कह तो नहीं सकता। किंतु मैं बिना मूल्य का दास हूँ। अनुग्रह करके कोमल कंठ से कुछ सुनाओ।

श्यामा : जैसी आज्ञा।

(बजाने वाले आते हैं/गान और नृत्य)

चला है मंथर गति में पवन रसीला नंदन कानन का।
नदन कानन का, रसीला नंदन कानन का।। च०।।

फूलों पर आनद-भैरवी गाते मधुकर बृंद,
बिखर रही है किस यौवन की किरण, खिला अरविंद,–
ध्यान है किसके आनन का।
नंदन कानन का, रसीला नंदन कानन का।। च०।।

उषा सुनहला मद्य पिलाती, प्रकृति बरसाती फूल,
मतवाले होकर देखो तो विधि-निषेध को भूल;
आज कर लो अपने मन का।
नंदन कानन का, रसीला नंदन कानन का।। च०।।

समुद्रदत्त : अहा ! श्यामा का-सा कंठ भी है। सुन्दरी, तुम्हारी जैसी प्रशंसा सुनी थी, वैसी ही तुम हो ! एक बार इस तीव्र मादक को और पिला दो—पागल हो जाने के लिए इन्द्रियाँ प्रस्तुत हैं।

(श्यामा इंगित करती है/सब जाते हैं)

श्यामा : क्षमा कीजिये, मैं इस समय बड़ी चिंतित हूँ, इस कारण आपको प्रसन्न न कर सकी। अभी दासी ने आकर एक बात ऐसी कही है कि मेरा चित्त चंचल हो उठा। केवल शिष्टाचारवश इस समय मैंने आपको गाना सुनाया –

समुद्रदत्त : वह कैसी बात है, क्या मैं भी सुन सकता हूँ ?

श्यामा : (संकोच से)—आप अभी तो विदेश से आ रहे हैं, मुझसे कोई घनिष्टता भी नहीं, तब कैसे अपना हाल कहूँ।

समुद्रदत्त : सुंदरी ! तुम्हारा यह संकोच व्यर्थ है।

श्यामा : मेरा एक संबंधी किसी अपराध में बंदी हुआ है, दण्ड-नायक ने कहा है कि यदि रात-भर में मेरे पास हजार मोहरें पहुँच जायँ, तो मैं इसे छोड़ दूँगा, नहीं तो नहीं। (रोती है)

समुद्रदत्त : तो इसमें कौन-सी चिंता की बात है। मैं देता हूँ। इन्हें भेज दो।—(स्वगत) मैं भी तो षड्यंत्र करने आया हूँ—इसी

तरह दो चार अंतरंग मित्र बना लूँ, जिसमें समय पर काम आवें। दण्डनायक से भी समझ लूँगा—कोई चिंता नहीं।

श्यामा : (मोहरों की थैली देकर)—तोदा सी पर दया करके इसे दे आइये, क्योंकि मैं किस पर विश्वास करके इतना धन भेज दूँ। और यदि आपको पहचाने जाने की शंका हो तो मैं आपका वेश अभी बदल दे सकती हूँ।

समुद्रदत्त : अजी मोहरें तो मेरे पास हैं, इनकी क्या आवश्यकता ?

श्यामा : आपकी कृपा है। वह भी, मेरी ही हैं, किंतु इन्हें ही ले जाइये, नहीं तो आप इसे भी वार-वनिताओं की एक चाल समझियेगा।

समुद्रदत्त : भला यह कैसी बात—सुंदरी—श्यामा, तुम मेरी हंसी उड़ाती हो ! तुम्हारे लिए मेरे प्राण प्रस्तुत हैं। बात इतनी ही है कि वह मुझे पहचानता है।

श्यामा : नहीं, यह तो मेरी पहली बात आपको माननी ही होगी। इतना बोझ मुझ पर न दीजिये कि मैत्री में चतुरता की गंध आने लगे और हम लोगों को एक दूसरे पर शंका करने का अवकाश मिले। मैं आपका वेश बदल देती हूँ।

समुद्रदत्त : अच्छा प्रिये ! ऐसा ही होगा। मेरा वेश परिवर्तन करा दो।

(श्यामा वेश बदलती है और समुद्रदत्त मोहरों की थैली लेकर अकड़ता हुआ जाता है)

श्यामा : जाओ बलि के बकरे, जाओ ! फिर न आना। मेरा शैलेन्द्र, मेरा प्यारा शैलेन्द्र !

तुम्हारी मोहनी छवि पर निछावर प्राण हैं मेरे।
अखिल भूलोक बलिहारी मधुर मृदु हास पर तेरे ॥

(प्रस्थान)



[सेनापति बन्धुल का गृह/मल्लिका और दासी]

मल्लिका : संसार में स्त्रियों के लिए पति ही सब कुछ है, किंतु हाय ! आज मैं उसी सोहाग से वंचित हो गयी हूँ। हृदय थरथरा

रहा है, कंठ भरा आता है—एक निर्दय चेतना सब इन्द्रियों को अचेतन और शिथिल बनाये दे रही है। आह! (ठहर-कर और निःश्वास लेकर) हे प्रभु! मुझे बल दो—विपत्तियों को सहन करने के लिए—बल दो! मुझे विश्वास दो कि तुम्हारी शरण जाने पर कोई भय नहीं रहता, विपत्ति और दुःख उस आनन्द के दास बन जाते हैं, फिर सांसारिक आतंक उसे डरा नहीं सकते। मैं जानती हूँ कि मानव-हृदय अपनी दुर्बलता में ही सबल होने का स्वाँग बनाता है—किंतु मुझे उस बनावट से उस दंभ से बचा लो! शाँति के लिए साहस दो—बल दो!!

दासी : स्वामिनी धैर्य धारण कीजिये!

मल्लिका : सरला! धैर्य न होता, तो अब तक यह हृदय फट जाता—यह शरीर निस्पंद हो जाता। यह वैधव्य-दुख नारी-जाति के लिए कैसा कठोर अभिशाप है, किसी भी स्त्री को इसका अनुभव न करना पड़े।

दासी : स्वामिनी, इस दुःख में भगवान् ही सांत्वना दे सकेंगे—उन्हीं का अवलंब है।

मल्लिका : एक बात स्मरण हो आयी सरला!

दासी : क्या स्वामिनी?

मल्लिका : सद्धर्म के सेनापति सारिपुत्र मौग्दल्यायन को कल मैं निमंत्रण दे आयी हूँ, आज वे आवेंगे। देख, यदि न हुआ हो तो भिक्षा का प्रबंध शीघ्र कर, जा, शीघ्र जा—(दासी जाति है)—तथागत! तुम धन्य हो, तुम्हारे उपदेशों से हृदय निर्मल हो जाता है। तुमने संसार को दुःखमय बतलाया और उससे छूटने उपाय का भी सिखाया, कीट से लेकर इन्द्र तक की समता घोषित की, अपवित्रों को अपनाया, दुखियों को गले लगाया, अपनी दिव्य-करुणा की वर्षा से विश्व को आप्लावित किया—अमिताभ, तुम्हारी जय हो!

(सरला आती है)

सरला : स्वामिनी! भिक्षा का आयोजन सब ठीक है, कोई चिंता नहीं, किन्तु·······

मल्लिका : किन्तु नहीं, सरला ! मैं भी व्यवहार जानती हूँ, आतिथ्य परम धर्म है। मैं भी नारी हूँ, नारी के हृदय में जो हाहाकार होता है, वह मैं अनुभव कर रही हूँ। शरीर की धमनियाँ खिचने लगती है। जी रो उठता है, तब भी कर्त्तव्य को—करना ही होगा।

(सारिपुत्र और आनन्द का प्रवेश)

मल्लिका : जय हो ! अमिताभ की जय हो—दासी वंदना करती है। स्वागत !

सारिपुत्र : शांति मिले—संतोष में तृप्ति हो। देवि ! हम लोग आ गये—भिक्षा प्रस्तुत है ?

मल्लिका : देव ! यथाशक्ति प्रस्तुत है। पावन कीजिये। चलिये।

(दासी जल लाती है, मल्लिका पैर धुलाती है/दोनों बैठते हैं और भोजन करते हैं/ लाते समय स्वर्ण-पात्र दासी से गिरकर टूट जाता है/मल्लिका उसे दूसरा लाने को कहती है)

आनन्द : देवि ! दासी का अपराध क्षमा करना—जितनी वस्तुएँ बनती हैं, वे सब बिगड़ने ही के लिए। यही उसका परिणाम था, उसमें बेचारी दासी को कलंक-मात्र था।

मल्लिका : यथार्थ है !

सारिपुत्र : आनन्द ! क्या तुमने समझा मल्लिका दासी पर रुष्ट होगी ! क्या तुमने अभी नहीं पहिचाना ? स्वर्ण-पात्र टूटने से इन्हें क्या क्षोभ होगा—स्वामी के मारे जाने का समाचार अभी हम लोगों के आने के थोड़ी ही देर पहले आया है; किन्तु वह भी इन्हें अपने कर्त्तव्य से विचलित नहीं कर सका ! फिर यह तो एक धातुपात्र था !—(मल्लिका से) तुम्हारा धैर्य सराहनीय है। आनन्द ! तो इस मूर्तिमती धर्म-परायणता से कर्त्तव्य की शिक्षा लो !

आनन्द : महिमामयी ! अपराध क्षमा हो। आज मुझे विश्वास हुआ कि केवल काषाय धारण कर लेने से ही धर्म पर एकाधिकार नहीं हो जाता—वह तो चित्त-शुद्धि से मिलता है।

मल्लिका : पतितपावन की अमोघ वाणी ने दृश्यों की नश्वरता की घोषणा की है। अब मुझे वह मोह की दुर्बलता-सी दिखाई पड़ती है। उस धर्म-शासन से कभी विद्रोह नहीं करूँगी, वह मानव का पवित्र अधिकार है, शांतिदायक धैर्य का साधन है, जीवन का विश्राम है—(पैर पकड़ती है)—महा-पुरुष ! आशीर्वाद दीजिये कि मैं इससे विचलित भी न होऊँ।

सारिपुत्र : उठो देवि ! उठो ! तुम्हें मैं क्या उपदेश करूँ ? तुम्हारा चरित्र, धैर्य का—कर्त्तव्य का—स्वयं आदर्श है। तुम्हारे हृदय में अखण्ड शांति है। हाँ, तुम जानती हो कि तुम्हारा शत्रु कौन है—तब भी विश्व मैत्री के अनुरोध से, उससे केवल उदासीन न रहो, प्रत्युत् द्वेष भी न रखो।

(महाराज प्रसेनजित का प्रवेश)

प्रसेनजित् : महास्थविर ! मैं अभिवादन करता हूँ। मल्लिका देवी, मैं क्षमा माँगने आया हूँ।

मल्लिका : स्वागत महाराज ! क्षमा किस बात की ?

प्रसेनजित् : नहीं—मैंने अपराध किया है। सेनापति बंधुल के प्रति मेरा हृदय शुद्ध नहीं था—इसलिए उनकी हत्या का पाप मुझे भी लगता है।

मल्लिका : यह अब छिपा नहीं है महाराज ! प्रजा के साथ आप इतना छल, इतनी प्रवंचना और कपट व्यवहार रखते हैं ! धन्य हैं।

प्रसेनजित् : मुझे धिक्कार दो—मुझे शाप दो—मल्लिका ! तुम्हारे मुखमण्डल पर तो ईर्ष्या और प्रतिहिंसा का चिह्न भी नहीं है। जो तुम्हारी इच्छा हो वह कहो, उसे मैं पूर्ण करूँगा—

मल्लिका : (हाथ जोड़कर)—कुछ नहीं महाराज ! आज्ञा दीजिये कि आपके राज्य से निर्विघ्न चली जाऊँ, किसी शान्तिपूर्ण स्थान में रहूँ। ईर्ष्या से आपका हृदय प्रलय के मध्याह्न का सूर्य हो रहा है, उसकी भीषणता से बचकर किसी छाया में विश्राम करूँ। और मैं कुछ भी नहीं चाहती।

सारिपुत्र : मूर्तिमयी करुणे ! तुम्हारी विजय है।

(हाथ जोड़ता है)



[महाराज बिम्बिसार का गृह/बिम्बिसार और वासवी]

बिम्बिसार : रात में ताराओं का प्रभाव विशेष रहने से चन्द्र नहीं दिखलाई देता और चन्द्रमा का तेज बढ़ने से तारे सब फीके पड़

जाते हैं, क्या इसी को शुक्लपक्ष और कृष्णपक्ष कहते हैं ? देवि ! कभी तुमने इस पर विचार किया है ?

वासवी : आर्यपुत्र ! मुझे तो विश्वास है कि नीला पर्दा इसका रहस्य छिपाये है, जितना चाहता है, उतना ही प्रकट करता है। कभी निशाकर को छाती पर लेकर खेला करता है, कभी ताराओं को बिखेरता कृष्णा कुहू के साथ क्रीड़ा करता है।

बिम्बिसार : और कोमल पत्तियां को, जो अपनी डाली में निरीह लटका करती है, प्रभञ्जन क्यों झिझोड़ता है ?

वासवी : उसकी गति है, वह किसी से कहता नहीं है कि तुम मेरे मार्ग में अड़ो; जो साहस करता हैं उसे हिलना पड़ता है। नाथ ! समय भी इसी तरह चला जा रहा है, उसके लिए पहाड़ और पत्ती बराबर हैं।

बिम्बिसार : फिर उसकी गति तो सम नहीं है – ऐसा क्यों ?

वासवी : यही समझाने के लिए बड़े-बड़े दार्शनिकों ने कई तरह की व्याख्यायें की हैं, फिर भी प्रत्येक नियम में अपवाद लगा दिये हैं। यह नहीं कहा जा सकता कि अपवाद नियम पर है, या नियामक पर। संभवत: उसे ही लोग बवंडर कहते हैं।

बिम्बिसार : तब तो देवि ! प्रत्येक असंभावित घटना के मूल में यही बवंडर है। सच तो यह है कि विश्व-भर में स्थान-स्थान पर वात्याचक्र है, जल में उसे भँवर कहते हैं, स्थल पर उसे बवंडर कहते हैं, राज्य में विप्लव, समाज में उच्छृंखलता और धर्म में पाप कहते हैं। चाहे इन्हें नियमों का अपवाद कहो, चाहे बवंडर—यही न ?

(छलना का प्रवेश)

बिम्बिसार : यह लो—हम लोग तो बवंडर की ही बातें करते थे, तुम यहाँ कैसे पहुँच गयीं ! राजमाता महादेवी को इस दरिद्र-कुटीर में क्या आवश्यकता हुई ?

छलना : मैं बवंडर हूँ—इसलिए जहाँ मैं चाहती हूँ, असंभावित रूप से चली जाती हूँ और देखना चाहती हूँ कि इस प्रवाह में कितनी सामर्थ्य है—इसमें आवर्त्त उत्पन्न कर सकती हूँ कि नहीं !

वासवी : छलना ! बहिन ! तुमको क्या हो गया है ?

छलना : प्रमाद—और क्या। अभी संतोष नहीं हुआ ? इतना उपद्रव करा चुकी हो, और भी कुछ शेष है ?

वासवी : क्यों, अजात तो अच्छी तरह है ? कुशल तो है ?

छलना : क्या चाहती हो ! समुद्रदत्त काशी में मारा ही गया। कोसल और मगध में युद्ध हो रहा है। अजात भी उसमें गया है। साम्राज्य भर में आतंक है।

बिम्बिसार : युद्ध में क्या हुआ ? (मुँह फिराकर) —अथवा मुझे क्या ?

छलना : शैलेन्द्र नाम के डाकू ने द्वंद्वयुद्ध में आह्वान करके फिर धोखा देकर कोसल के सेनापति को मार डाला। सेनापति के मर जाने से सेना घबरायी थी, उसी समय अजात ने आक्रमण कर दिया और विजयी हुआ—काशी पर अधिकार हो गया।

वासवी : तब इतना घबराती क्यों हो ? अजात को रण-दुर्मद साहसी बनाने के लिए ही तो तुम्हें इतनी उत्कंठा थी। राजकुमार को तो ऐसी उद्धत शिक्षा तुम्हीं ने दी थी, फिर उलाहना क्यों ?

छलना : उलाहना क्यों न दूँ—जबकि तुमने जान-बूझकर यह विप्लव खड़ा किया है। क्या तुम इसे दबा नहीं सकती थीं, क्योंकि वह तो तुम्हारे पिता से तुम्हें मिला हुआ प्रांत था।

वासवी : जिसने दिया था, यदि वह ले ले, तो मुझे क्या अधिकार है कि मैं उसे न लौटा दूँ ? तुम्हीं बतलाओ कि मेरा अधिकार छीनकर जब आर्यपुत्र ने तुम्हें दे दिया, तब भी मैंने कोई विरोध नहीं किया था ?

छलना : यह ताना सुनने मैं नहीं आयी हूँ। वासवी, तुमको तुम्हारी असफलता सूचित करने आयी हूँ।

बिम्बिसार : तो राजमाता को कष्ट करने की क्या आवश्यकता थी? यह तो एक सामान्य अनुचर कर सकता था।

छलना : किन्तु वह मेरी जगह तो नहीं हो सकता था और संदेश भी अच्छी तरह किसी से नहीं कहता। वासवी के मुख की प्रत्येक सिकुड़न पर इस पर लक्ष्य न रखता, न तो वासवी को इतना प्रसन्न ही कर सकता।

बिम्बिसार : (खड़े होकर)—छलना! मैंने राजदंड छोड़ दिया है, किंतु मनुष्यता ने अभी मुझे नहीं परित्याग किया है। सहन की भी सीमा होती है, अधम नारी! चली जा। तुझे लज्जा नहीं—बर्बर लिच्छिवि-रक्त!

वासवी : बहिन! जाओ, सिंहासन पर बैठकर राजकार्य देखो। व्यर्थ झगड़ने से तुम्हें क्या सुख मिलेगा? और अधिक तुम्हें क्या कहूँ, तुम्हारी बुद्धि!

(छलना जाती है)

वासवी : (प्रार्थना करती है)

दाता सुमति दीजिये!
मानव-हृदय-भूमि करुणा से सींचकर
बोधन-विवेक-बीज अंकुरित कीजिये।
दाता सुमति दीजिये॥

जीवक : (प्रवेश करके) जय हो देव!

बिम्बिसार : जीवक, स्वागत! तुम बड़े समय पर आये! इस समय हृदय बड़ा उद्विग्न था। कोई नया समाचार सुनाओ।

जीवक : कौशाम्बी के समाचार तो लिखकर भेज चुका हूँ। नया समाचार यह है कि मागंधी का सब षड्यंत्र खुल गया और

राजकुमारी पद्मावती का गौरव पूर्ववत् हो गया। वह दुष्टा मागंधी महल में आग लगाकर जल मरी !

बिम्बिसार : बेटी पद्मा ! प्राण बचे। इतने दिनों तक बड़ी दुःखी रही, क्यों जीवक ?

वासवी : और कोसल का क्या समाचार है ? विरुद्धक को भाई ने क्षमा किया या नहीं ? वह आजकल कहाँ है ?

जीवक : वही तो काशी का शैलेंद्र है। उसने मगध-नरेश—नहीं-नहीं—कुमार कुणीक से मिलकर कोसल-सेनापति बंधुल को मार डाला और स्वयं इधर-उधर विद्रोह करता फिर रहा है।

वासवी : यह क्या है ! भगवान् ! बच्चों को यह क्या सूझी है ? क्या यही राजकुल की शिक्षा है ?

जीवक : और महाराज प्रसेनजित् घायल होकर रणक्षेत्र से लौट गये। इधर कोई और नई बात हुई हो, तो मैं नहीं जानता।

बिम्बिसार : जीवक, अब तुम विश्राम करो। अब और कोई समाचार सुनने की इच्छा नहीं है। संसार-भर में विद्रोह, संघर्ष, हत्या, अभियोग, षड्यंत्र और प्रतारणा है। यही सब तुम सुनाओगे, ऐसा मुझे निश्चय हो गया। जाने दो। एक शीतल निःश्वास लेकर तुम विश्व के वात्याचक्र से अलग हो जाओ और इस पर प्रलय के सूर्य की किरणों से तप कर गलते हुए गीले लोहे की वर्षा होने दो। अविश्वास की आँधियों को सरपट दौड़ने दो। पृथ्वी के प्राणियों में अन्याय बढ़े, जिससे दृढ़ होकर लोग अनीश्वरवादी हो जायँ, और प्रतिदिन नयी समस्या हल करते-करते कुटिल, कृतघ्न जीव मूर्खता की धूल उड़ावें—और विश्व भर में इस पर एक उन्मत्त अट्टहास हो।

(उन्मत्त भाव से प्रस्थान)



[कोसल की सीमा पर मल्लिका की कुटी के द्वार पर
मल्लिका और दीर्घकारायण]

कारायण : नहीं, मैं कभी इसका अनुमोदन नहीं कर सकता। आप चाहे इसे धर्म समझें; किंतु साँप को जीवनदान करना, कभी भी लोक-हितकारी नहीं है।

मल्लिका : कारायण ! तुम्हारा रक्त अभी बहुत खौल रहा है। तुम्हारी प्रति-हिंसा की बर्बरता वेगवती है; किंतु सोचो, विचारो, जिसके हृदय में विश्व-मैत्री के द्वारा करुणा का उद्रेक हुआ है; उसे अपकार का स्मरण क्या कभी अपने कर्त्तव्य से विचलित कर सकता है ?

कारायण : आप देवी हैं। सौरमण्डल से भिन्न जो केवल कल्पना के आधार पर स्थित है, उस जगत् की बातें आप सोच सकती हैं। किंतु हम इस संघर्षपूर्ण जगत् के जीव हैं, जिसमें कि शून्य भी प्रतिध्वनि देता है, जहाँ किसी को वेग से कंकड़ी मारने पर वही कंकड़ी—मारने वाले की ओर—लौटने की चेष्टा करती है। इसलिए मैं तो यही कहूँगा कि इस मरणासन्न घमण्डी और दुर्वृत्त कोसल-नरेश की रक्षा आपको नहीं करनी चाहिये।

मल्लिका : अपना कर्त्तव्य मैं अच्छी तरह जानती हूँ। करुणा की विजय-पताका के नीचे हमने प्रयाण करने का दृढ़ विचार करके उसकी अधीनता स्वीकार कर ली है। अब एक पग भी पीछे हटने का अवकाश नहीं। विश्वासी सैनिक के समान नश्वर जीवन का बलिदान करूँगी—कारायण !

कारायण : तब मैं जाता हूँ—जैसी इच्छा।

मल्लिका : ठहरो, मैं तुमसे एक बात पूछना चाहती हूँ। क्या तुम इस युद्ध में नहीं गये थे ? क्या तुमने अपने हाथों से जान-बूझकर कोसल को पराजित होने नहीं दिया ? क्या सच्चे सैनिक के समान ही तुम इस रण-क्षेत्र में खड़े थे और तब भी कोसल-नरेश की यह दुर्दशा हुई ? जब तुम इस लघु-सत्य को पालने में असमर्थ हुए, तब तुमसे और महान् स्वार्थ-त्याग की क्या आशा की जाय ! मुझे विश्वास है कि यदि कोसल की सेना अपने सत्य पर रहती, तो यह दुःखद घटना न होने पाती।

कारायण : इसमें मेरा क्या अपराध है ? जैसो सबको—वैसी ही मेरी भी इच्छा थी ।

(कुटी से घायल प्रसेनजित् निकलता है)

प्रसेनजित् : देवो, तुम्हारे उपकारों का बोझ मुझे असह्य हो रहा है। तुम्हारो शोतलता ने इस जलते हुए लाहे पर विजय प्राप्त कर ली है। बार-बार क्षमा माँगने पर हृदय को संतोष नहीं होता। अब मैं श्रावस्ती जाने को आज्ञा चाहता हूँ।

मल्लिका : सम्राट् ! क्या आपको मैंने बंदो कर रखा है ? यह कैसा प्रश्न ! बड़ी प्रसन्नता से आप जा सकते हैं।

प्रसेनजित् : नहीं, देवी ! इस दुराचारी के पैरों में तुम्हारे उपकारों की बेड़ी और हाथों में क्षमा की हथकड़ी पड़ो है। जब तक तुम कोई आज्ञा देकर इसे मुक्त नहों करोगी, यह जाने में असमर्थ है।

मल्लिका : कारायण ! यह तुम्हारे सम्राट् हैं—जाओ, इन्हें राजधानी तक सकुशल पहुँचा दो, मुझे तुम्हारे बाहुबल पर भरोसा है, और चरित्र पर भी।

प्रसेनजित् : कौन कारायण, सेनापति बंधुल का भागिनेय ?

कारायण : हाँ श्रोमान् ! वहो कारायण अभिवादन करता है।

प्रसेनजित् : कारायण ! माता ने आज्ञा दी है, तुम मुझे कल पहुँचा दोगे ? देखो जननी की यह मूर्ति ! विपद में बच्चे की तरह उसने मेरी सेवा को है। क्या तुम इसमें भक्ति करते हो ? यदि तुमने इन दिव्य-चरणों की भक्ति पायी है, तो तुम्हारा जीवन धन्य है।

(मल्लिका का पैर पकड़ता है)

मल्लिका : उठिये सम्राट् ! उठिये ! मर्यादा भंग करने का आपको भी अधिकार नहीं है।

प्रसेनजित् : यदि आज्ञा हो तो मैं दीर्घकारायण को अपना सेनापति बनाऊँ और इसी वीर में स्वर्गीय सेनापति बंधुल की प्रतिकृति देखकर अपने कुकर्म का प्रायश्चित् करूँ। देवी! मैं स्वीकार करता हूँ कि महात्मा बंधुल के साथ मैंने घोर अन्याय किया है। और आपने क्षमा करके मुझे कठोर दण्ड दिया है। हृदय में इसकी बड़ी ज्वाला है—देवी! एक अभिशाप तो दे दो, जिसमें नरक की ज्वाला शांत हो जाय और पापी प्राण निकलने में सुख पावे।

मल्लिका : अतीत के वज्र-कठोर हृदय पर जो कुटिल रेखा-चित्र खिंच गये हैं, वे क्या कभी मिटेंगे? यदि आपकी इच्छा है तो वर्तमान में कुछ रमणीय सुन्दर चित्र खींचिये, जो भविष्य में उज्ज्वल होकर दर्शकों के हृदय को शांति दें। दूसरों को सुखी बनाकर सुख पाने का अभ्यास कीजिये।

प्रसेनजित् : आपका आशीर्वाद सफल हो! चलो कारायण!

(दोनों नमस्कार करके जाते हैं)

मल्लिका : (प्रार्थना करती है)

अधीर हो न चित्त विश्व-मोह-जाल में।
यह वेदना - विलोल - बीचि - मय समुद्र है।।
है दुःख का भँवर चला कराल चाल में।
वह भी क्षणिक, इसे कहीं टिकाव है नहीं।।
सब लौट जायँगे उसी अनन्त काल में।
अधीर हो न चित्त विश्व-मोह-जाल में।।

अजातशत्रु : (प्रवेश करके) —कहाँ गया! मेरे क्रोध का कंदुक, मेरी क्रूरता का खिलौना, कहाँ गया? रमणी! शीघ्र बता—वह घमंडी कोसल-सम्राट् कहाँ गया?

मल्लिका : शांत हो राजकुमार कुणीक! शांत हो। तुम किसे खोजते हो? बैठो। अहा, यह सुन्दर मुख, इसमें भयानकता क्यों ले आते हो? सहज सुन्दर बदन को क्यों विकृत करते हो? शीतल हो, विश्राम लो। देखो, यह अशोक की शीतल छाया तुम्हारे हृदय को कोमल बना देगी, बैठ जाओ।

अजातशत्रु : (मुग्ध-सा बैठ जाता है)—क्या यहीं प्रसेनजित् नहीं रहा, अभी मुझे गुप्तचर ने समाचार दिया है।

मल्लिका : हाँ, इसी आश्रम में उनकी शुश्रूषा हुई है और वे स्वस्थ होकर अभी-अभी गये हैं। पर तुम उन्हें लेकर क्या करोगे? तुम उष्ण रक्त चाहते हो या इस दौड़-धूप के बाद शीतल हिम-जल? युद्ध में जब यशार्जन कर चुके, तब हत्या करके क्या अब हत्यारे बनोगे? वीरों को विजय की लिप्सा होनी चाहिये, न कि हत्या की।

अजातशत्रु : देवी, आप कौन हैं? हृदय नम्र होकर आप-ही-आप प्रणाम करने को झुक रहा है। ऐसी पिघला देने वाली वाणी तो मैंने कभी नहीं सुनी।

मल्लिका : मैं स्वर्गीय कोसल-सेनापति की विधवा हूँ, जिसके जीवन में तुम्हारी बड़ी हानि थी और उसे षड्यंत्र के द्वारा मरवा कर तुमने काशी का राज्य हस्तगत किया है।

अजातशत्रु : यह षड्यंत्र स्वयं कोसल-नरेश का था, क्या यह आप नहीं जानतीं?

मल्लिका : जानती हूँ, और यह भी जानती हूँ कि सभी मृत्पिंड इसी मिट्टी में मिलेंगे।

अजातशत्रु : तब भी आपने उस अधम जीवन की रक्षा की! ऐसी क्षमा! आश्चर्य! यह देव-कर्त्तव्य ...।

मल्लिका : नहीं राजकुमार, यह देवता का नहीं—मनुष्य का कर्त्तव्य है। उपकार, करुणा, समवेदना और पवित्रता मानव-हृदय के लिए ही बने हैं।

अजातशत्रु : क्षमा हो देवि! मैं जाता हूँ—अब कोसल पर आक्रमण नहीं करूँगा! इच्छा थी कि इसी समय इस दुर्बल राष्ट्र को हस्तगत करूँ, किंतु नहीं, अब लौट जाता हूँ।

मल्लिका : जाओ, गुरुजनों को संतुष्ट करो।

(अजात जाता है)



[श्रावस्ती के एक उपवन में श्यामा और शैलेंद्र मद्यपान करते हुए]

शैलेंद्र : प्रिये ! यहाँ आकर मन बहल गया ।

श्यामा : क्या वहाँ मन नहीं लगता था ? क्या रूप-रस से तृप्ति हो गयी ?

शैलेंद्र : नहीं श्यामा ! तुम्हारे सौंदर्य ने तो मुझे भुला दिया है कि मैं डाकू था। मैं स्वयं भूल गया हूँ कि मैं कौन था, मेरा उद्देश्य क्या था; और तुम ! एक विचित्र पहेली हो। हिंस्र पशु को पालतू बना लिया, आलसपूर्ण सौंदर्य की तृष्णा मुझे किस लोक में ले जा रही है ? तुम क्या हो सुन्दरी ?

(पान करता है)

श्यामा : (गाती है)—

निर्जन गोधूली प्रांतर में खोले पर्णकुटी के द्वार,
दीप जलाये बैठे थे तुम किये प्रतीक्षा पर अधिकार।
बटमारों से ठगे हुए की ठुकराये की लाखों से,
किसी पथिक की राह देखते अलस अकंपित आँखों से—
पलकें झुकीं यवनिका-सी थी अंतस्तल के अभिनय में।
इधर वेदना श्रम-सीकर आँसू की बूँदें परिचय में।
फिर भी परिचय पूछ रहे हो, विपुल विश्व में किसको दूँ ?
चिनगारी श्वासों में उठती, रो लूँ, ठहरो दम ले लूँ,
निर्जन कर दो क्षण भर कोने में, उस शीतल कोने में,
यह विश्राल संभल जायेगा सहज व्यथा के सोने में।
बीती बेला, नील गगन-तम, छिन्न विपंची, भूला प्यार,
क्षपा-सदृश छिपना है फिर तो परिचय देंगे आँसू-हार।।

(शैलेंद्र उसे पान कराता है)

शैलेन्द्र : ओह, मैं बेसुध हो चला हूँ—इस संगीत के साथ सौंदर्य और सुरा ने मुझे अभिभूत कर लिया है। तब यही सही।

(दोनों पान करते हैं/श्यामा सो जाती है)

शैलेन्द्र : (स्वगत)–काशी के उस संकीर्ण भवन में छिपकर रहते-रहते चित्त घबरा गया था। समुद्रदत्त के मारे जाने का मैं ही कारण था, इसीलिए प्रकाश्य रूप से अजातशत्रु से मिल-

कर कोई कार्य भी नहीं कर सकता था। इस पामरी की गोद में मुँह छिपाकर कितने दिन बिताऊँ? हमारे भावी कार्यों में अब यह विघ्नस्वरूप हो रही है। यह प्रेम दिखाकर मेरी स्वतन्त्रता हरण कर रही है। अब नहीं, इस गर्त्त में मैं अब नहीं गिरा रहूँगा। कर्मपथ के कोमल और मनोहर कंटकों को कठोरता से, निर्दयता से हटना ही पड़ेगा। तब, आज से अच्छा समय कहाँ!

(श्यामा सोई हुई कोई भयानक स्वपन देख रही है, उससे चौंक-कर उठती है)

श्यामा : शैलेन्द्र.......

शैलेन्द्र : क्यों प्रिये!

श्यामा : प्यास लगी है।

शैलेन्द्र : क्या पियोगी?

श्यामा : जल।

शैलेन्द्र : प्रिये! जल तो नहीं है यह शीतल पेय है—पी लो।

श्यामा : विष! ओह सिर घूम रहा है। मैं बहुत पी चुकी हूँ। अब....जल....भयानक स्वप्न। क्या तुम मुझे जलते हुए हलाहल की मात्रा पिला दोगे।

(अर्द्ध-निमीलित नेत्रों से देखती हुई)

अमृत हो जायगा, विष भी पिला दो हाथ से अपने।
पलक ये छक चुके हैं चेतना उसमें लगी काँपने।।

विकल हैं इन्द्रियाँ, हाँ देखते इस रूप के सपने।
जगत विस्मृत हृदय पुलकित लगा वह नाम है जपने।।

शैलेन्द्र : छिः! यह क्या कह रही हो? कोई स्वप्न देख रही हो क्या? लो थोड़ी पी लो।

(पिला देता है)

श्यामा : मैंने अपने जीवन भर में तुम्हीं को प्यार किया है। तुम मुझे धोखा तो नहीं दोगे ? ओह ! कैसा भयानक स्थान है ! उसी स्वप्न की तरह........

शैलेन्द्र : क्या बक रही हो ! सो जाओ, वन-विहार से थकी हो।

श्यामा : (आँखें बंद किये हुए)–क्यों यहां ले आये ! क्या घर में सुख नहीं मिलता था ?

शैलेन्द्र : कानन की हरी-भरी शोभा देखकर जी बहलाना चाहिये, क्यों तुम इस प्रकार बिछली जा रही हो।

श्यामा : नहीं नहीं, मैं आँख न खोलूँगी, डर लगता है, तुम्हीं पर मेरा विश्वास है; यहीं रहो।

(निद्रित होती है)

शैलेन्द्र : (स्वगत)—सो गयी ! आह ! हृदय में एक वेदना उठती है··ऐसी सुकुमार वस्तु ! नहीं-नहीं ! किन्तु विश्वास के बल पर ही इसने समुद्रदत्त के प्राण लिये। यह नागिन है, पलटते देर नहीं। मुझे अभी प्रतिशोध लेना है—दावाग्नि-सा बढ़कर फैलना है, उसमें चाहे सुकुमार तृण-कुसुम हो अथवा विशाल शालवृक्ष, दावाग्नि या अन्धड़ छोटे-छोटे फूलों को बचाकर नहीं चलेगा। तो बस ···

श्यामा : (जगकर)–शैलेन्द्र ! विश्वास ! देखो कहीं ···ओह भयानक····

(आँखें बंद कर लेती है)

शैलेन्द्र : तब देर क्या ? कहीं कोई आ जायगा ! फिर—(श्यामा का गला घोंटता है, वह क्रंदन करके शिथिल हो जाती है) बस चलें, पर नहीं, धन की भी आवश्यकता है।

(आभूषण उतार कर ले जाता है/गौतम बुद्ध और आनन्द का प्रवेश)

आनन्द : भगवन् देवदत्त ने तो अब बड़े उपद्रव मचाये। तथागत को कलंकित और अपमानित करने के लिए उसने कौन से उपाय नहीं किये ? उसे इसका फल मिलना चाहिए।

गौतम : यह मेरा काम नहीं–वेदना और संज्ञाओं का दुःख अनुभव करना मेरी सामर्थ्य के बाहर है। हमें अपना कर्त्तव्य करना चाहिए, दूसरों के मलिन कर्मों को विचारने से भी चित्त पर मलिन छाया पड़ती है।

आनन्द : देखिये, अभी चिंचा को लेकर उसने कितना बड़ा अपवाद लगाना चाहा था—केवल आपकी मर्यादा गिरा देने की इच्छा से।

गौतम : किंतु सत्य के सूर्य को कहीं—कोई चलनी से ढक लेगा? इस क्षणिक प्रवाह में सब विलीन हो जायेंगे। मुझे अकार्य करने से क्या लाभ! चिंचा को ही देखो, अब बात खुल गयी कि उसे गर्भ नहीं है, वह केवल मुझे अपवाद लगाना चाहती थी। तभी उसकी कैसी दुर्गति हुई। शुद्ध-बुद्धि की प्रेरणा से सत्कर्म करते रहना चाहिये। दूसरों की ओर उदासीन हो जाना ही शत्रुता की पराकाष्ठा है। आनन्द, दूसरों का अपकार सोचने से अपना हृदय भी कलुषित होता है।

आनन्द : यथार्थ है प्रभु। (श्यामा के शव को देखकर) अरे यह क्या! चलिये गुरुदेव! यहाँ से शीघ्र हट चलिये! देखिये, अभी यहाँ कोई कांड घटित हुआ है।

गौतम : अरे, यह तो कोई स्त्री है, उठाओ आनंद! इसे सहायता की आवश्यकता है।

आनन्द : तथागत आपके प्रतिद्वन्द्वी इससे बड़ा लाभ उठावेंगे। यह मृतक स्त्री विहार में ले जाकर क्या आप कलंकित होना चाहते हैं।

गौतम : क्या करुणा का आदेश कलंक के डर से भूल जाओगे? यदि हम लोगों की सेवा से वह कष्ट से मुक्त हो गयी तब? और मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि यह मरी नहीं है। आनंद, विलंब न करो। यदि यह यों ही पड़ी रही, तब

भी तो विहार पीछे ही है। उस अपवाद से हम लोग कहाँ बचेंगे ?

आनन्द : प्रभु, जैसी आज्ञा।

(श्यामा को उठाकर दोनों ले जाते हैं/शैलेन्द्र का प्रवेश)

शैलेन्द्र : उसे कोई उठा ले गया। चलो मैं भी उसके घर में जो कुछ था, ले आया। अब कहाँ चलना चाहिये। श्रावस्ती तोअपनी राजधानी है; पर यहां अब एक क्षण भी मैं नहीं ठहरूँगा। माता से भेंट हो चुकी, इतना द्रव्य भी हाथ लगा। बस कारायण से मिलता हुआ एक बार ही सीधे राजगृह ! रहा अजात से मिलना, किंतु अब कोई चिंता नहीं, श्यामा तो रही नहीं, कौन रहस्य खोलेगा ? समुद्रदत्त के लिये मैं भी कोई बात बना दूंगा। तो चलूँ, इस संघाराम में कुछ भीड़-सी एकत्र हो रही है, यहाँ ठहरना अब ठीक नहीं।

(जाता है/एक भिक्षु का प्रवेश)

भिक्षु : आश्चर्य ! वह मृत स्त्री जी उठी और इतनी देर में दुष्टों ने कितना आतंक फैला दिया था। समग्र विहार मनुष्यों से भर गया था। दुष्ट जनता को उभाड़ने के लिये कह रहे थे कि पाखंडी गौतम ने ही उसे मार डाला। इस हत्या में गौतम का ही कोई बुरी इच्छा थी ! किंतु उसके स्वस्थ होते ही सबके मुँह में कालिख लग गयी। और अब तो लोग कहते हैं 'धन्य है, गौतम बड़े महात्मा हैं। उन्होंने मरी हुई स्त्री को जिला दिया।' मनुष्यों के मुख में भी तो साँपों की तरह दो जीभ हैं। चलूँ देखूं, कोई बुला रहा है।

(जाता है/रानी शक्तिमती और कारायण का प्रवेश)

शक्तिमति : क्यों सेनापति, तुम तो इस पद से संतुष्ट होगे ? अपने मातुल की दशा-तो अब तुम्हें भूल गयी होगी ?

कारायण : नहीं रानी ! वह भी इस जन्म में भूलने की बात है ! क्या करूँ, मल्लिका देवी की आज्ञा से मैंने यह पद ग्रहण किया है; किन्तु हृदय में बड़ी ज्वाला धधक रही है।

शक्तिमति : पर तुम्हें इसके लिए चेष्टा करनी चाहिये, स्त्रियों की तरह रोने से काम न चलेगा। विरुद्धक ने तुमसे भेंट की थी ?

कारायण : कुमार बड़े साहसी हैं—मुझसे कहने लगे कि 'अभी मैंने एक हत्या की है और उससे मुझे यह धन मिला है, सो तुम्हें गुप्त-सेना-संगठन के लिए देता हूँ। मैं फिर उद्योग में जाता हूँ। यदि तुमने धोखा दिया, तो स्मरण रखना—शैलेंद्र किसी पर दया करना नहीं जानता।' उस समय मैं तो केवल बात ही सुनकर स्तब्ध रह गया। बस स्वीकार करते ही बना रानी ! उस युवक को देखकर मेरी आत्मा काँपती है।

शक्तिमती : अच्छा, तो प्रबन्ध ठीक करो। सहायता मैं दूंगी। पर यहाँ भी अच्छा खेल हुआ....

कारायण : हम लोग भी तो उसी को देखने आये थे। आश्चर्य ! क्या जाने कैसे वह स्त्री जी उठी ? नहीं तो अभी ही गौतम का सब महात्मापन भूल जाता।

शक्तिमती : अच्छा, अब हम लोगों को शीघ्र चलना चाहिये, सब जनता नगर की ओर जा रही है। देखो, सावधान रहना, मेरा रथ भी बाहर खड़ा होगा।

कारायण : कुछ सेना अपनी निज की प्रस्तुत कर लेता हूँ, जो कि राजसेना से बराबर मिली-जुली रहेगी और काम के समय हमारी आज्ञा मानेगी।

शक्तिमती : और भी एक बात कहनी है—कौशाम्बी का दूत आया है। संभवत: कौशाम्बी और कोसल की सेना मिलकर अजात पर आक्रमण करेंगी। उस समय तुम क्या करोगे ?

कारायण : उस समय वीरों की तरह मगध पर आक्रमण करूँगा और संभवत: इस बार अवश्य अजात को बन्दी बनाऊँगा। अपने घर की बात अपने घर में ही निपटेगी।

शक्तिमती : (कुछ सोचकर) अच्छा।

(दोनों जाते हैं)



[कौशाम्बी के पथ में जीवक और वसंतक]

वसंतक : (हँसता हुआ)–तब इसमें मेरा क्या दोष ?

जीवक : जब तुम दिन-रात राजा के समीप रहते हो और उनके सहचर बनने का तुम्हें गर्व है, तब तुमने क्यों नहीं ऐसी चेष्टा की—

वसंतक : कि राजा बिगड़ जायँ ?

जीवक : अरे बिगड़ जायँ कि सुधर जायँ। ऐसी बुद्धि को....।

वसंतक : धिक्कार है, जो इतना भी न समझे कि राजा के पीछे चाहे स्वयं सुधर जायँ, अभी तो हमसे बिगड़ जायँगे।

जीवक : तब तुम क्या करते हो ?

वसंतक : दिन-रात सीधा किया करते हैं। बिजली की रेखा की तरह टेढ़ी जो राजशक्ति है, दिन-रात संवार कर, पुचकार कर, भयभीत होकर, प्रशंसा करके सीधा करते हैं। नहीं तो न जाने किस पर वह गिरे। फिर महाराज ! पृथ्वीनाथ ! यथार्थ है ! आश्चर्य ! इत्यादि के क्वाथ से पुटपाक····।

जीवक : चुप रहो, बको मत, तुम्हारे ऐसे मूर्खों ने ही तो सभा को बिगाड़ रखा है। जब देखो परिहास।

वसंतक : परिहास नहीं अट्टहास। उसके बिना क्या लोगों का अन्न पचता है। क्या बल है—तुम्हारी बूटी में ? अरे ! जो मैं सभा को बनाऊँ, तो क्या अपने को बिगाड़ूँ ? और फिर झाड़ू लेकर पृथ्वी-देवता को मोरछल करता फिरूँ ? देखो न अपना मुख आदर्श में चले सभा बनाने, राजा को सुधारने ! इस समय तो····।

जीवक : तो इससे क्या, हम अपना कर्त्तव्य पालन करते हैं, दुःख से विचलित तो नहीं होते—

> लोभ सुख का नहीं, न तो डर है।
> प्राण कर्त्तव्य पर निछावर है।।

वसंतक : तो इससे क्या ? हम भी अपना पेट पालते हैं, अपनी मर्यादा बनाये रहते हैं, किसी और के दुःख से हम भी टस-से-मस नहीं होते—एक बाल-भर भी नहीं समझे ? और काम कितने सम पर और सुरीला करते हैं, सो भी जानते हो। जहाँ उन्होंने आज्ञा दी कि "इसे मारो", हम तत्काल ही सम पर बोलते हैं कि "रोऽऽऽ"

जीवक : जाओ रोओ !

बसंतक : क्या तुम्हारे नाम को ? अरे रायें तुम्हारे-से परोपकारी, जो राजा को समझाया चाहते हैं। घण्टों बकवाद करके उन्हें तंग करना और अपने मुख को भी कष्ट देना। जो जीभ अच्छा स्वाद लेने के लिए बनी है, उसे व्यर्थ हिलाना-डुलाना ! अरे, यहाँ तो जब राजा ने एक लम्बी-चौडी आज्ञा सुनायी; उसी समय "यथार्थ है श्रीमान्" कह कर विनीत होकर गर्दन झुका ली—बस इति श्री! नहीं तो राजसभा में बैठने कौन देता है।

जीवक : तुम लोग जैसे चाटुकारों का भी कैसा अधम जीवन है !

वसंतक : और आप-जैसे लोगों का उत्तम ? कोई माने चाहे न माने-टाँग अड़ाये जाते हैं ! मनुष्यता का ठीका लिए फिरते हैं।

जीवक : अच्छा भाई, तुम्हारा कहना ठीक है, जाओ, किसी प्रकार से पिंड भी छूटे।

वसंतक : पद्मावती देवी ने कहा है कि आर्य जीवक से कह देना कि अजात का कोई अनिष्ट न होने पावेगा। केवल शिक्षा के लिए यह आयोजन है। और, माताजी से विनती से कह देंगे कि पद्मावती बहुत शीघ्र उनका दर्शन श्रावस्ती में करेंगी।

जीवक : अच्छा तो क्या युद्ध होना ध्रुव है ?

वसंतक : हाँ जी, प्रसेनजित् भी प्रस्तुत हैं। महाराजा उदयन से मंत्रणा ठीक हो गयी है। आक्रमण हुआ ही चाहता है। महाराज बिम्बिसार की समुचित सेवा करने—अब यहाँ हम लोग आया ही चाहते हैं, पत्तल परसी रहे—समझे न ?

जीवक : अरे पेटू, युद्ध में तो कौए-गिद्ध पेट भरते हैं।

वसंतक : और इस आपस के युद्ध में ब्राह्मण भोजन करेंगे, ऐसी तो शास्त्र की आज्ञा ही है। क्योंकि युद्ध से तो प्रायश्चित लगता है। फिर बिना, ह-ह-ह-ह····।

जीवक : जाओ महाराज, दंडवत।

(दोनों जाते हैं)



[मगध में छलना के प्रकोष्ठ में छलना और अजातशत्रु]

छलना : बस थोड़ी-सी सफलता मिलते ही अकर्मण्यता ने संतोष का मोदक खिला दिया ! पेट भर गया ! क्या तुम भूल गये कि 'संतुष्टश्च महीपतिः ।'

अजातशत्रु : माँ क्षमा हो। युद्ध में बड़ी भयानकता होती है, कितनी स्त्रियाँ अनाथ हो जाती हैं। सैनिक जीवन का महत्त्वमय चित्र न जाने किस षड्यंत्रकारी मस्तिष्क की भयानक कल्पना है। सभ्यता से मानव की जो पाशव-वृत्ति दबी हुई रहती है उसी को इसमें उत्तेजना मिलती है। युद्धस्थल का दृश्य बड़ा भीषण होता है।

छलना : कायर! आँखें बंद कर ले। यदि ऐसा ही था, तो क्यों बूढ़े बाप को हटाकर सिंहासन पर बैठा?

अजातशत्रु : तुम्हारी आज्ञा से माँ। मैं आज भी सिंहासन से हटकर पिता की सेवा करने को प्रस्तुत हूँ।

देवदत्त : (प्रवेश करके)—किंतु अब बहुत दूर तक बढ़ आये, लौटने का समय नहीं है। उधर देखो, कोसल और कौशाम्बी की सम्मिलित सेना मगध पर गरजती चली आ रही है।

छलना : यदि उसी समय कोसल पर आक्रमण हो जाता, तो आज इसका अवकाश ही न मिलता।

देवदत्त : समुद्रदत्त का मारा जाना आपको अधीर कर रहा है; किंतु क्या समुद्रदत्त के ही भरोसे आप सम्राट् बने थे? वह निर्बोध विलासी—उसका ऐसा परिणाम तो होना ही था। पौरुष करने वाले को अपने बल पर विश्वास करना चाहिए।

छलना : बच्चे! मैंने बड़ा भरोसा किया था कि तुम्हें भरतखंड का सम्राट् देखूँगी और वीरप्रसू होकर एक बार गर्व से तुमसे चरण-वंदना कराऊँगी, किंतु आह! पति-सेवा से भी वंचित हुई और पुत्र का····।

देवदत्त : नहीं-नहीं, राजमाता दुःखी न हों, अजातशत्रु तुम्हारा अमूल्य वीर-रत्न है। रण की भयानकता देखकर तो क्षण भर के लिए वीर धनंजय का भी हृदय पिघल गया था।

(सहसा विरुद्धक का प्रवेश)

विरुद्धक : माता, वंदना करता हूँ। भाई अजात! क्या तुम विश्वास करोगे—मैं साहसिक हो गया हूँ। किंतु मैं भी राजपुत्र हूँ और हमारा-तुम्हारा ध्येय एक ही है।

अजातशत्रु : तुम्हें! कभी नहीं, तुम्हारे षड्यंत्र से समुद्रदत्त मारा गया, और····

विरुद्धक : और कोसल-नरेश को पाकर भी मेरे कहने से छोड़ दिया, क्यों? यदि मेरी मंत्रणा लेते, तो आज तुम मगध में सम्राट् होते और मैं कोसल के सिंहासन पर बैठकर सुख भोगता। किंतु उस दुष्टा मल्लिका ने तुम्हें·······।

अजातशत्रु : हाँ, उसमें तो मेरा ही दोष था। किंतु अब तो मगध और कोसल आपस में शत्रु हैं, फिर हम तुम पर विश्वास क्यों करें?

विरुद्धक : केवल एक बात विश्वास करने की है। यही कि तुम कोसल नहीं चाहते और मैं काशी-सहित मगध नहीं चाहता। देखो, सेनापति कारायण ही कोसल की सेना का नेता है। वह मिला हुआ है, और विशाल सम्मिलित वाहिनी क्षुब्ध समुद्र के समान गर्जन कर रही है। मैं खड्ग लेकर शपथ करता हूँ कि कौशाम्बी की सेना पर मैं आक्रमण करूँगा और दीर्घकारायण के कारण जो निर्बल कोसल सेना है उस पर तुम; जिसमें तुम्हें विश्वास बना रहे। यही समय है, विलम्ब ठीक नहीं।

छलना : कुमार विरुद्धक! क्या तुम अपने पिता के विरुद्ध खड़े होगे? और किस विश्वास पर····।

विरुद्धक : जब मैं पदच्युत और अपमानित व्यक्ति हूँ, तब मुझे अधिकार है कि सैनिक कार्य में किसी का भी पक्ष ग्रहण कर सकूँ, क्योंकि यही क्षत्रिय की धर्मसम्मत आजीविका है। हाँ, पिता से मैं स्वयं नहीं लड़ूँगा। इसीलिए कौशाम्बी की सेना पर मैं आक्रमण करना चाहता हूँ।

छलना : अब अविश्वास का समय नहीं है। रणवाद्य समीप ही सुनाई पड़ते हैं।

अजातशत्रु : जैसी माता की आज्ञा!

(छलना तिलक और आरती करती है/नेपथ्य में रणवाद्य, विरुद्धक और अजात की युद्ध-यात्रा)

पटाक्षेप

तृतीय अंक



[मगध के राज भवन में छलना और देवदत्त]

छलना : धूर्त ! तेरी प्रवंचना से मैं इस दशा को प्राप्त हुई। पुत्र बंदी होकर विदेश चला गया और पति को मैंने स्वयं बंदी बनाया ! पाखंडी तूने ही यह कुचक्र रचा है।

देवदत्त : नारी ! क्या तुझे राजशक्ति का घमंड हो गया है, जो परिव्राजकों से इस तरह की बातें करती है ! तेरी राज-

लिप्सा और महत्वाकांक्षा ने ही तुझसे सब कुछ कराया, तू दूसरे पर क्यों दोषारोपण करती है, क्या मुझे ही राज्य भोगना है ?

छलना : पाखंड ! जब तूने धर्म के नाम पर उत्तेजित करके मुझे कुशिक्षा दी, तब मैं भूल में थी। गौतम को कलंकित करने के लिये कौन श्रावस्ती गया था ? और किसने मतवाला हाथी दौड़ाकर उनके प्राण लेने की चेष्टा की थी ? ओह ! मैं किस भ्रांति में थी ! जी चाहता है कि इस नर-पिशाच मूर्ति को अभी मिट्टी में मिला दूँ। प्रतिहारी।

प्रतिहारी : (प्रवेश करके)—महादेवी की जय हो ! क्या आज्ञा है ?

छलना : अभी इस मुड़िये को बंदी बनाओ और वासवी को पकड़ लाओ ! **(प्रतिहारी इंगित करता है/देवदत्त बंदी होता है)**

देवदत्त : इसका फल तुझे मिलेगा !

छलना : घायल बाघिनी को भय दिखाता है ! वर्षा की पहाड़ी नदी को हाथों से रोक लेना चाहता है ! देवदत्त ! ध्यान रखना, इस अवस्था में नारी क्या नहीं कर सकती है ! अब तेरा अभिशाप मुझे नहीं डरा सकता। तू अपने कर्म भोगने के लिए प्रस्तुत हो जा। **(वासवी का प्रवेश)**

छलना : अब तो तुम्हारा हृदय संतुष्ट हुआ ?

वासवी : क्या कहती हो छलना ? अजात बंदी हो गया तो मुझे सुख मिला, यह बात कैसे तुम्हारे मुख से निकली ! क्या वह मेरा पुत्र नहीं है ?

छलना : मीठे मुँह की डायन! अब तेरी बातों से मैं ठंडी नहीं होने की ! ओह ! इतना साहस, इतनी कूट-चातुरी ! आज मैं उसी हृदय को निकाल लूंगी, जिसमें यह सब भरा था। वासवी—सावधान ! मैं भूखी सिंहनी हो रही हूँ।

वासवी : छलना, उसका मुझे डर नहीं है। यदि तुम्हें इससे कोई सुख मिले, तो तुम करो। किंतु एक बात और विचार लो—क्या कोसल के लोग जब मेरी यह अवस्था सुनेंगे तो अजात को शीघ्र-मुक्त कर देने के बदले कोई दूसरा कांड न उपस्थित करेंगे ?

छलना : तब क्या होगा ?

वासवी : जो होगा वह तो भविष्य के गर्भ में है, किंतु मुझे एक बार कोसल अनिच्छापूर्वक भी जाना ही होगा अजात को ले आने की चेष्टा करनी ही होगी।

छलना : यह और भी अच्छी रही—जो हाथ का है उसे भी जाने दूँ ! क्यों वासवी! पद्मावती को पढ़ा रही हो !

वासवी : बहिन छलना ! मुझे तुम्हारी बुद्धि पर खेद होता है। क्या मैं अपने प्राणों को डरता हूँ; या सुख-भोग के लिए जा रही हूँ ? ऐसी अवस्था में आर्यपुत्र को मैं छोड़कर चली जाऊंगी, ऐसा भी तुम्हें अब तक विश्वास है ? मेरा उद्देश्य केवल विवाद मिटाने का है।

छलना : इसका प्रमाण ?

वासवी : प्रमाण आर्यपुत्र है। छलना, चौंको मत। तुम भी उन्हीं की परिणीता पत्नी हो, तब भी तुम्हारे विश्वास के लिए मैं उन्हें तुम्हारी देख-रेख में छोड़ जाऊंगी। हाँ, इतनी प्रार्थना है कि उन्हें कोई कष्ट न होने पावे, और क्या कहूँ, वे ही तुम्हारे भी पति हैं। हाँ, देवदत्त को मुक्त कर दो ! चाहे इसने कितना भी हम लोगों का अनिष्ट-चिंतन किया हो। फिर भी परिव्राजक मार्जनीय है।

छलना : (प्रहरियों से)–छोड़ दो इसको, फिर काला मुख मगध में न दिखावे।

(प्रहरी छोड़ते हैं/देवदत्त जाता है)

वासवी : देखो, राज्य में आतंक न फैलने पावे। दृढ़ होकर मगध का शासन करना ! किसी को कष्ट भी न हो। और प्यारी छलना ! यदि हो सके तो आर्यपुत्र की सेवा करके नारी-जन्म को सार्थक कर लेना।

छलना : वासवी ! बहिन ! (रोने लगती है) मेरा कुणीक मुझे दे दो, मैं भीख मांगती हूँ ! मैं नहीं जानती थी कि निसर्ग से इतनी करुणा और इतना स्नेह, संतान के लिए इस हृदय में संचित था। यदि जानती होती, तो इस निष्ठुरता का स्वाँग न करती !

वासवी : रानी ! यही जो जानती कि नारी का हृदय कोमलता का पालना है, दया का उद्गम है, शीतलता की छाया है और अनन्य भक्ति का आदर्श है, तो पुरुषार्थ का ढोंग क्यों करती। रो मत बहिन ! मैं जाती हूँ, तू यही समझ कि कुणीक ननिहाल गया है।

छलना : तुम जानो। (दोनों का प्रस्थान)



[कोसल के राजमहल से लगा हुआ बन्दीगृह/बाजिरा का प्रवेश]

बाजिरा : (आप-हो-आप)—क्या विप्लव हो रहा है। प्रकृति से विद्रोह करके नये साधनों के लिये कितना प्रयास होता है! अन्धो जनता अँधेरे में दौड़ रहो है। इतनी छीना-झपटो,

इतना स्वार्थ-साधन कि सहज-प्राप्य अन्तरात्मा की सुख-शान्ति को भी लोग खो बैठते हैं ! भाई-भाई से लड़ रहा है, पुत्र पिता से विद्रोह कर रहा है, स्त्रियाँ पतियों पर शासन करना चाहती हैं ! उनसे प्रेम नहीं, मनुष्य-मनुष्य के प्राण लेने के लिए शस्त्रकला को प्रधान गुण समझने लगा है और उन गाथाओं को लेकर कवि कविता करते हैं ! बर्बर रक्त में और भी उष्णता उत्पन्न करते हैं ! राज-मन्दिर बन्दीगृह में बदल गये हैं ! कभी सौहार्द से जिसका आतिथ्य कर सकते थे, उसे बन्दी बना कर रखा है। सुन्दर राजकुमार ! कितनी सरलता और निर्भीकता इस विशाल भाल पर अंकित है ! अहा ! जीवन धन्य हो गया है। अन्त:करण में एक नवीन स्फूर्ति आ गयी है। एक नवीन संसार इसमें बन गया है। यही यदि प्रेम है तो अवश्य स्पृहणीय है, जीवन की सार्थकता है। कितनी सहानुभूति, कितनी कोमलता का आनंद मिलने लगा है ! (ठहर कर सोचती हुई) एक दिन पिताजी को पैर पकड़ कर प्रार्थना करूँगी कि इस बंदी को छोड़ दो। किसी राष्ट्र का शासक होने के बदले इसे प्रेम के शासन में रखने से मैं प्रसन्न रहूँगी। मनोरम सुकुमार वृत्तियों का छायापूर्ण हृदय में आविर्भाव-तिरोभाव होते देखूँगी और आँखें बंद कर लूँगी। (गाती है)

हमारे जीवन का उल्लास, हमारे जीवन धन का रोष।
हमारी करुणा के दो बूँद मिले एकत्र, हुआ संतोष॥

दृष्टि को कुछ भी रुकने दो, न यों चमका दो अपनी कांति।
देखने दो क्षण भर भी तो, मिले सौंदर्य देखकर शांति॥

नहीं तो निष्ठुरता का अंत, चला दो चपल नयन के बाण।
हृदय छिद जाता विकल बेहाल, बेदना से हो उसका त्राण॥

(खिड़की खुलती है/बंदी अजातशत्रु दिखलाई देता है)

अजातशत्रु : इस श्यामा रजनी में चंद्रमा की सुकुमार किरण-सी तुम कौन हो—सुन्दरी, कई दिन मैंने देखा, मुझे भ्रम हुआ कि यह स्वप्न है ! किंतु नहीं, अब मुझे विश्वास हुआ है कि भगवान् ने करुणा की मूर्ति मेरे लिए भेजी है और इस

बन्दी गृह में भी उसको कोई अप्रकट इच्छा कौशल कर रही है।

बाजिरा : राजकुमार ! मेरा परिचय पाने पर तुम घृणा करोगे और फिर मेरे आने पर मुँह फेर लोगे—तब मैं बड़ी व्यथित हूँगी ! हम लोग इस तरह अपरिचित रहें। अभिलाषायें नये रूप बदलें, किन्तु वे नीरव रहें। उन्हें बोलने का अधिकार न हो। बस, तुम हमें एक करुण-दृष्टि से देखो और मैं कृतज्ञता के फूल तुम्हारे चरणों पर चढ़ाकर चली जाया करूँगी।

अजातशत्रु : सुन्दरी ! यह अभिनय कई दिन हो चुका, अब धैर्य नहीं रुकता है। तुम्हें अपना परिचय देना ही होगा।

बाजिरा : राजकुमार ! मेरा परिचय पाकर तुम संतुष्ट न होगे, नहीं तो मैं छिपाती क्यों ?

अजातशत्रु : तुम चाहे प्रसेनजित् की ही कन्या क्यों न हो; किन्तु मैं तुमसे असंतुष्ट न हूँगा; मेरी समस्त श्रद्धा अकारण तुम्हारे चरणों पर लौटने लगी है, सुन्दरी !

बाजिरा : मैं वही हूँ राजकुमार ! कोसल की राजकुमारी ! मेरा ही नाम बाजिरा है।

अजातशत्रु : सुनता था कि प्रेम द्रोह को पराजित करता है। आज विश्वास भी हो गया। तुम्हारे उदार प्रेम ने मेरे विद्रोही हृदय को विजित कर लिया। अब यदि कोसल-नरेश मुझे बंदीगृह से छोड़ दें, तब भी....।

बाजिरा : तब भी क्या ?

अजातशत्रु : मैं कैसे जा सकूँगा ?

बाजिरा : (ताली निकाल कर जंगला खोलती है/अजात बाहर आता है) अब तुम जा सकते हो। पिता की सारी झिड़कियां मैं सुन लूँगी। उनका समस्त क्रोध मैं अपने वक्ष पर वहन करूँगी। राजकुमार, अब तुम मुक्त हो, जाओ !

अजातशत्रु : यह तो नहीं हो सकता। इस प्रकार के प्रतिफल में तुम्हें अपने पिता से तिरस्कार और भर्त्सना ही मिलेगी। शुभे !

अब यह तुम्हारा चिर-बंदी मुक्त होने की चेष्टा भी न करेगा।

बाजिरा : प्रिय राजकुमार ! तुम्हारा इच्छा, किंतु फिर मैं अपने को रोक न सकूँगी और हृदय की दुर्बलता या प्रेम की सबलता मुझे व्यथित करेगी।

अजातशत्रु : राजकुमारी ! तो हम लोग एक-दूसरे को प्यार करने के अयोग्य हैं, ऐसा कोई मूर्ख भी न कहेगा।

बाजिरा : तब प्राणनाथ ! मैं अपना सर्वस्व तुम्हें समर्पण करती हूँ—

(अपनी माला पहनाती है)

अजातशत्रु : मैं अपने समेत उसे तुम्हें लौटा देता हूँ प्रिये ! हम-तुम अभिन्न हैं। यह जंगली हिरन—इस स्वर्गीय संगीत पर—चौकड़ी भरना भूल गया है। अब यह तुम्हारे प्रेम-पास में पूर्णरूप से बद्ध है।

(अँगूठी पहनाता है/सहसा कारायण का प्रवेश)

कारायण : यह क्या ! बंदीगृह में प्रेमलीला। राजकुमारी ! तुम कैसे यहाँ आयी हो? क्या राजनियम की कठोरता भूल गयी हो?

बाजिरा : इसका उत्तर देने के लिए मैं बाध्य नहीं हूँ ?

कारायण : किंतु यह कांड एक उत्तर की आशा करता है। वह मुझे नहीं तो महाराज के समक्ष देना होगा। बंदी, तुमने ऐसा क्यों किया ?

अजातशत्रु : मैं तुमको उत्तर नहीं देना चाहता। तुम्हारे महाराज से मेरी प्रतिद्वंद्विता है—उनके सेवकों से नहीं।

कारायण : राजकुमारी ! मैं कठोर कर्त्तव्य के लिए बाध्य हूँ। इस बंदी राजकुमार को ढिठाई का शिक्षा देनी ही होगी।

बाजिरा : क्यों ? बंदी भाग तो गया नहीं, भागने का प्रयास भी उसने नहीं किया; फिर !

कारायण : फिर ? आह ! मेरी समस्त आशाओं पर तुमने पानी फेर दिया ! भयानक प्रतिहिंसा मेरे हृदय में जल रही है ; उस युद्ध में मैंने तुम्हारे लिए ही····।

बाजिरा : सावधान ! कारायण, अपनी जीभ सँभालो !

अजातशत्रु : कारायण ! यदि तुम्हें अपने बाहुबल पर भरोसा हो तो मैं तुमको द्वंद्व-युद्ध के लिए आह्वान करता हूँ।

कारायण : मुझे स्वीकार है, यदि राजकुमारी की प्रतिष्ठा पर आँच न पहुँचे। क्योंकि मेरे हृदय में अभी भी स्थान है। क्यों राजकुमारी, क्या कहती हो ?

अजातशत्रु : तब और किसी समय। मैं अपने स्थान पर जाता हूँ। जाओ राजनंदिनी !

बाजिरा : किंतु कारायण ! मैं आत्म-समर्पण कर चुकी हूँ।

कारायण : यहाँ तक ! कोई चिंता नहीं। इस समय तो चलिए, महाराज आया ही चाहते हैं।

(अजात जंगले में जाता है/एक ओर कारायण और बाजिरा जाते हैं/दूसरी ओर से वासवी और प्रसेनजित का प्रवेश)

प्रसेनजित् : क्यों कुणीक, अब क्या इच्छा है ?

वासवी : न न, भाई ! खोल दो। इसे मैं इस तरह देखकर बात नहीं कर सकती। मेरा बच्चा कुणीक—

प्रसेनजित : बहिन ! जैसा कहो।

(खोल देता है/वासवी अंक में ले लेती है)

अजातशत्रु : कौन ! विमाता ? नहीं, तुम मेरी माँ हो ! माँ ! इतनी ठंडी गोद तो मेरी मां की भी नहीं है। आज मैंने जननी की शीतलता का अनुभव किया। मैंने तुम्हारा बड़ा अपमान किया है, माँ ! क्या तुम क्षमा करोगी ?

वासवी : वत्स कुणीक ! वह अपमान भी अब क्या मुझे स्मरण है। तुम्हारी माता, तुम्हारी माँ नहीं है, मैं तुम्हारी माँ हूँ। वह तो डायन है, उसने मेरे सुकुमार बच्चे को बन्दी-गृह भेज दिया ! भाई, मैं इसे शीघ्र मगध के सिंहासन पर भेजना चाहती हूँ तुम इसके जाने का प्रबन्ध कर दो।

अजातशत्रु : नहीं माँ, अब कुछ दिन उस विषैली वायु से अलग रहने दो। तुम्हारी शीतल छाया का विश्राम मुझसे अभी नहीं छोड़ा जायगा।

(घुटने टेक देता है/वासवी अभय का हाथ रखती है)



[कानन का प्रांत]

विरुद्धक : आर्द्र हृदय में करुण कल्पना के समान आकाश में कादंबिनी घिरी आ रही है। पवन से उन्मत्त आलिंगन से तरुराजि सिहर उठती है। झुलसी हुई कामनायें मन में अंकुरित हो हो रही हैं। क्यों जलदागमन से ? आह !

अलका की किस विकल विरहिणी की पलकों का ले अवलंब
सुखी सो रहे थे इतने दिन, कैसे हे नीरद निकुरंब !
बरस पड़े क्यों आज अचानक सरसिज कानन का संकोच,
अरे जलद में भी यह ज्वाला ! झुके हुए क्यों किसका सोच,
किस निष्ठुर ठंडे हृत्तल में, जमे रहे तुम बर्फ समान ?
पिघल रहे हो किस गर्मी से ! हे करुणा के जीवन-प्राण ?
चपला की व्याकुलता लेकर चातक का ले करुण विलाप,
तारा आँसू पोंछ गगन के, रोते हो किस दुख से आप ?
किस मानस-निधि में न बुझा था बड़वानल जिससे बन भाप
प्रणय-प्रभाकर कर से चढ़कर इस अनंत का करते माप,
क्यों जुगनू का दीप जला, है पथ में पुष्प और आलोक ?
किस समाधि पर बरसे आँसू किसका है यह शीतल शोक ।
थके प्रवासी बनजारों-से लौटे हो मंथर गति से;
किस अतीत की प्रणय-पिपासा जगती चपला-सी स्मृति से ?

मल्लिका : (प्रवेश करके) तुम्हें सुखी देखकर मैं संतुष्ट हुई कुमार !

विरुद्धक : मल्लिका ! मैं तो आज टहलता-टहलता कुटी से दूर चला आया हूं । अब तो मैं सबल हो गया, तुम्हारी इस सेवा से मैं जीवन भर उऋण नहीं हूँगा ।

मल्लिका : अच्छा किया । तुम्हें स्वस्थ देखकर मैं बहुत प्रसन्न हुई । अब तुम अपनी राजधानी को लौट जा सकते हो ।

विरुद्धक : मुझे तुमसे बहुत कुछ कहना है । मेरे हृदय में बड़ी खलबली है । यह तो तुम्हें विदित था कि सेनापति बंधुल को मैंने ही मारा है; और उसी की तुमने इतनी सेवा की ! इससे क्या मैं समझूँ । क्या मेरी शंका निर्मूल नहीं है ? कह दो मल्लिका !

मल्लिका : विरुद्धक ! तुम उसका मनमाना अर्थ लगाने का भ्रम मत करो । तुमने समझा होगा कि मल्लिका का हृदय कुछ विचलित है, छिः ! तुम राजकुमार हो न, इसीलिए । अच्छी बात क्या तुम्हारे मस्तिष्क में कभी आयी ही नहीं; मल्लिका उस मिट्टी की नहीं है, जिसकी तुम समझते हो ।

विरुद्धक : किंतु मल्लिका ! अतीत में तुम्हारे ही लिये मेरा वर्त्तमान बिगड़ा । पिता ने जब तुमसे मेरा ब्याह करना अस्वीकार

किया, उसी समय से मैं पिता के विरुद्ध हुआ और उस का यह परिणाम हुआ ।

मल्लिका : इसके लिए मैं कृतज्ञ नहीं हो सकती। राजकुमार ! तुम्हारा कलंकी जीवन भी बचाना मैंने अपना धर्म समझा। और यह मेरी विश्वमैत्री की परीक्षा थी। इसमें जब मैं उत्तीर्ण हो गयी तब मुझे अपने पर विश्वास हुआ। विरुद्धक, तुम्हारा रक्त कलुषित हाथ मैं छू भी नहीं सकती। तुमने कपिलवस्तु के निरीह प्राणियों का, किसी भूल पर, निर्दयता से वध किया, तुमने पिता से विद्रोह किया, विश्वासघात किया; एक वीर को छल से मार डाला और अपने देश की जन्मभूमि के विरुद्ध—अस्त्र ग्रहण किया ! तुम्हारे ऐसा नीच और कौन होगा ! किंतु यह सब जानकर भी मैं तुम्हें रणक्षेत्र से सेवा के लिए उठा लायी।

विरुद्धक : तब क्यों नहीं मर जाने दिया ? क्यों इस कलंकी जीवन को बचाया और अब....।

मल्लिका : तुम इसलिए नहीं बचाये गये कि फिर भी एक विरक्त नारी पर बलात्कार और लंपटता का अभिनय करो। जीवन इसलिए मिला है कि पिछले कुकर्मों का प्रायश्चित्त करो—अपने को सुधारो।

(श्यामा का प्रवेश)

श्यामा : और भी एक भयानक अभियोग है—इस नरराक्षस पर ! इसने एक विश्वास करने वाली स्त्री पर अत्याचार किया है, उसकी हत्या की है ! शैलेंद्र ?

विरुद्धक : अरे श्यामा !

श्यामा : हां शैलेंद्र, तुम्हारी नीचता का प्रत्यक्ष उदाहरण मैं अभी जीवित हूँ। निर्दय ! चांडाल के समान क्रूर कर्म तुमने किया ! आह, जिसके लिए मैंने अपना सब छोड़ दिया, अपने वैभव पर ठोकर लगा दी, उसका ऐसा आचरण ? प्रतिहिंसा और पश्चात्ताप से सारा शरीर भस्म हो रहा है !

मल्लिका : विरुद्धक ! यह क्या, जो रमणी तुम्हें प्यार करती है, जिसने सर्वस्व तुम्हें अर्पण किया था, उसे भी तुम न चाह सके ! तुम कितने क्षुद्र हो ? तुम तो स्त्रियों की छाया भी छू सकने के योग्य नहीं हो।

विरुद्धक : मैं इसे वेश्या समझता था।

श्यामा : और मैं तुम्हें डाकू समझने पर भी चाहने लगी थी! इतना तुम्हारे ऊपर मेरा विश्वास था। तब मैं नहीं जानती थी कि तुम कोसल के राजकुमार हो!

मल्लिका : यदि तुम प्रेम का प्रतिदान नहीं जानते हो तो व्यर्थ एक सुकुमार नारी-हृदय को लेकर उसे पैरों से क्यों रौंदते हो? विरुद्धक! क्षमा माँगो; यदि हो सके तो इसे अपनाओ!

श्यामा : नहीं देवि! अब मैं आपकी सेवा करूँगी, राजसुख मैं बहुत भोग चुकी हूँ। अब मुझे राजकुमार विरुद्धक का सिंहासन भी अभीष्ट नहीं है, मैं तो शैलेंद्र डाकू को चाहती थी।

विरुद्धक : श्यामा, अब मैं तरह से प्रस्तुत हूँ और क्षमा भी माँगता हूँ।

श्यामा : अब तुम्हें तुम्हारा हृदय अभिशाप देगा—यदि मैं क्षमा भी कर दूँ। किंतु नहीं, विरुद्धक! अभी मुझमें उतनी सहनशीलता नहीं है।

मल्लिका : राजकुमार! जाओ, कोसल लौट जाओ; और यदि तुम्हें अपने पिता के पास जाने में डर लगता हो, तो मैं तुम्हारी ओर से क्षमा माँगूँगी। मुझे विश्वास है कि महाराज मेरी बात मानेंगे।

विरुद्धक : उदारता की मूर्त्ति! मैं किस तरह तुमसे, तुम्हारी कृपा से, अपने प्राण बचाऊँ! देवि! ऐसे भी जीव इसी संसार में हैं, तभी तो यह भ्रम-पूर्ण संसार ठहरा है। (पैरों पर गिरता है) देवि! अधम के अपराध क्षमा करो।

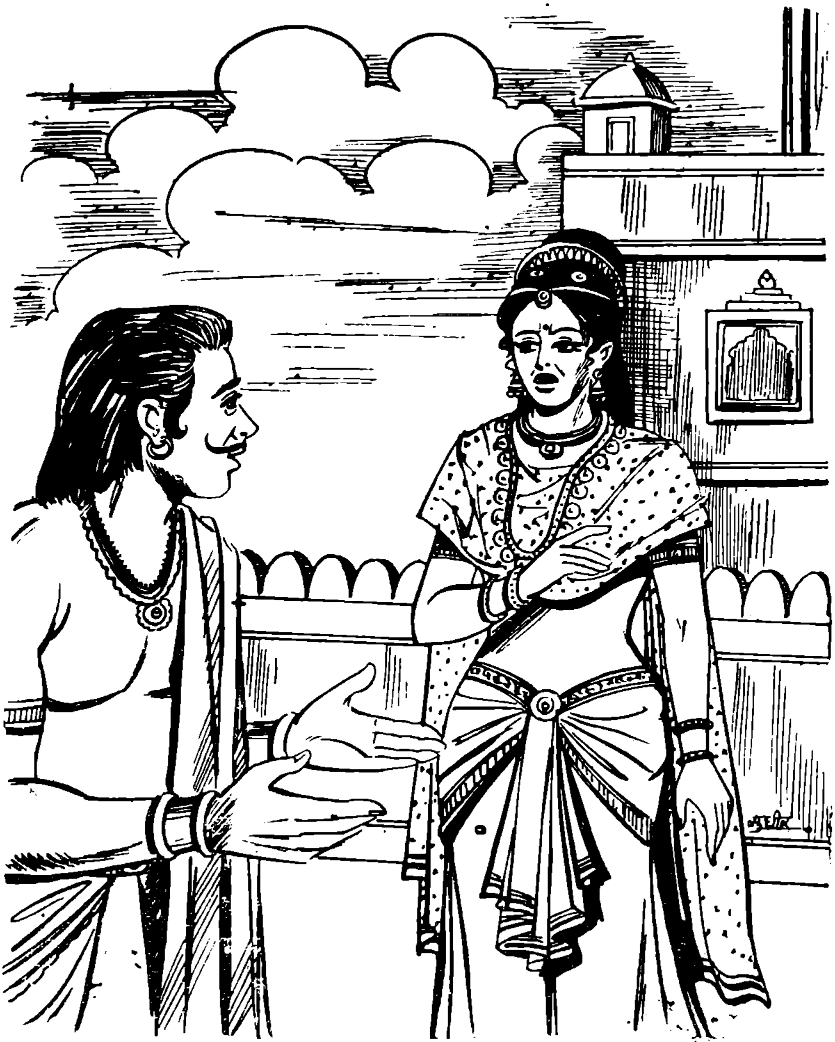
मल्लिका : उठो राजकुमार! चलो, मैं भी श्रावस्ती चलती हूँ। महाराज प्रसेनजित् से तुम्हारे अपराधों को क्षमा करा दूँगी, फिर इस कोसल को छोड़कर चली जाऊँगी। श्यामा, तब तक तुम इस कुटीर पर रहो, मैं आती हूँ।

(दोनों जाते हैं)

श्यामा : जैसी आज्ञा! (स्वगत) जिसे काल्पनिक देवत्व कहते हैं—वही तो सम्पूर्ण मनुष्यता है। मागंधी, धिक्कार है तुझे!

(गाती है)

स्वर्ग है नहीं दूसरा और।
सज्जन हृदय परम करुणामय यही एक है ठौर॥
सुधा-सलिल से मानस जिसका पूरित प्रेम-विभोर।
नित्य-कुसुममय कल्पद्रुम की छाया है इस ओर॥ स्वर्ग है०



[प्रकोष्ठ में दीर्घ कारायण और रानी शक्तिमती]

शक्तिमती : बाजिरा सपत्नी-कन्या है, मेरा तो कुछ वश नहीं, और तुम जानते हो कि मैं इस समय कोसल की कंकड़ी से भी गयी-बीती हूँ। किंतु कोसल के सेनापति करायाण का अपमान करे ऐसा तो—।

कारायण : रानी ! हम इधर से भी गये और उधर से भी गये ! विरुद्धक को भी मुँह दिखाने लायक न रहे और बाजिरा भी न मिली !

शक्तिमती : तुम्हारी मूर्खता ! जब मगध के युद्ध में मैंने तुम्हें सचेत किया था, तब तुम धर्म-ध्वज बन गये थे; और हमारे बच्चे को धोखा दिया ! अब सुनती हूँ कि वह उदयन के हाथ से घायल हुआ है। उसका पता भी नहीं है।

कारायण : मैं विश्वास दिलाता हूँ कि कुमार विरुद्धक अभी जीवित हैं। वह शीघ्र कोसल आवेंगे।

शक्तिमती : किंतु तुम इतने डरपोक और सहनशील दास हो, मैं ऐसा नहीं समझती थी। जिसने तुम्हारे मातुल का वध किया, उसी की सेवा करके अपने को धन्य समझ रहे हो ! तुम इतने कायर हो, यदि मैं पहले जानती !

कारायण : तब क्या करती ? अपने स्वामी की हत्या करके अपना गौरव, अपनी विजय-घोषणा स्वयं सुनातीं ?

शक्तिमति : यदि पुरुष इन कामों को कर सकता है तो स्त्रियाँ क्यों न करें ? क्या उन्हें अंतःकरण नहीं है ? क्या स्त्रियाँ अपना कुछ अस्तित्व नहीं रखतीं ? क्या उनका जन्म-सिद्ध कोई अधिकार नहीं ? क्या स्त्रियों का सब कुछ—पुरुषों की कृपा से मिली हुई—भिक्षा-मात्र है ? मुझे इस तरह पद-च्युत करने का किसी को क्या अधिकार था ?

कारायण : स्त्रियों के संगठन में, उनके शारीरिक और प्राकृतिक विकास में ही, एक परिवर्तन है—जो स्पष्ट बतलाता है कि वे शासन कर सकती हैं; किंतु हृदय पर। वे अधिकार जमा सकती है उन मनुष्यों पर—जिन्होंने समस्त विश्व पर अधिकार किया हो। वे मनुष्य पर राजरानी के समान एकाधिपत्य रख सकती हैं, तब उन्हें इस दुरभिसंधि की क्या आवश्यकता हैं—जो केवल सदाचार और शांति को ही नहीं शिथिल करतीं, उच्छृंखलता को भी आश्रय देती है।

शक्तिमती : फिर बार-बार यह अवहेलना कैसी ? यह बहाना कैसा ? हमारी असमर्थता सूचित कराकर हमें और भी निर्मूल आशंकाओं में छोड़ देने की कुटिलता क्यों है ? क्या हम पुरुष के समान नहीं हो सकतीं ? क्या चेष्टा करके हमारी स्वतंत्रता नहीं पददलित की गयी है ? देखो, जब गौतम ने स्त्रियों को भी प्रव्रज्या लेने की आज्ञा दी, तब क्या वे ही सुकुमार स्त्रियाँ परिव्रजिका के कठोर व्रत को अपनी सुकुमार देह पर नहीं उठाने का प्रयास करतीं ?

कारायण : किंतु यह साम्य और परिव्रजिका होने की विधि भी तो उन्हीं पुरुषों में से किसी ने फैलायी है। स्वार्थ-त्याग के कारण वे उसकी घोषणा करने में समर्थ हुए, किंतु समाज भर में न तो स्वार्थी स्त्रियों की कमी है, न पुरुषों की, और सब एक हृदय के है भी नहीं, फिर पुरुषों पर ही आक्षेप क्यों ? जितनी अंतःकरण की वृत्तियों का विकास सदाचार का ध्यान करके होता है—उन्हीं को जनता कर्त्तव्य का रूप देती है। मेरी प्रार्थना है कि तुम भी उन स्वार्थी मनुष्यों की कोटि में मिलकर बवंडर न बनो।

शक्तिमती : तब क्या करूँ ?

कारायण : विश्व-भर में सब कर्म सबके लिए नहीं हैं, इसमें कुछ विभाग हैं अवश्य। सूर्य अपना काम जलता-बलता हुआ करता है और चंद्रमा उसी आलोक को शीतलता से फैलाता है। क्या उन दोनों से परिवर्तन हो सकता है ? मनुष्य कठोर परिश्रम करके जीवन-संग्राम में प्रकृति पर यथाशक्ति अधिकार करके भी एक शासन चाहता है, जो उसके जीवन का परम ध्येय है, उसका एक शीतल विश्राम है। और वह स्नेह-सेवा-करुणा की मूर्त्ति तथा सांत्वना के अभय-हस्त का आश्रय, मानव समाज की सारी वृत्तियों की कुंजी, विश्व-शासन की एकमात्र अधिकारिणी प्रकृति-स्वरूपा स्त्रियों के सदाचारपूर्ण स्नेह का शासन है। उसे छोड़कर असमर्थता, दुर्बलता प्रकट करके इस दौड़-धूप में क्यों पड़ती हो देवि ! तुम्हारे राज्य की सीमा विस्तृत है, और पुरुष की संकीर्ण। कठोरता का उदाहरण

है पुरुष, और कोमलता का विशेषण है—स्त्रीजाति। पुरुष क्रूरता है तो स्त्री करुणा है—जो अंतर्जगत् का उच्चतम विकास है, जिसके बल पर समस्त सदाचार ठहरे हुए हैं। इसीलिए प्रकृति ने उसे इतना सुन्दर और मनमोहक आवरण दिया है—रमणी का रूप। संगठन और आधार भी वैसे ही हैं। उन्हें दुरुपयोग में न ले जाओ। क्रूरता अनुकरणीय नहीं है, उसे नारी-जाति जिस दिन स्वीकृत कर लेगी, उस दिन समस्त सदाचारों में विलप्व होगा। फिर कैसी स्थिति होगी, यह कौन कह सकता है!

शक्तिमती : फिर क्या पदच्युत करके मैं अपमानित और पददलित नहीं की गयी? क्या—यह ठीक था?

कारायण : पदच्युत होने का अनुभव करना भी एक दंभ-मात्र है। देवि! एक स्वार्थी के लिए पूरा समाज दोषी नहीं हो सकता। क्या मल्लिका देवी का उदाहरण कहीं दूर है! वही लोलुप नर-पिशाच मेरा और आपका स्वामी, कोसल का सम्राट्—क्या-क्या उनके साथ कर चुका है, यह क्या आप नहीं जानतीं? फिर भी उनकी सती सुलभ वास्तविकता देखिए और अपनी कृत्रिमता से तुलना कीजिये।

शक्तिमती : (सोचती हुई)—कारायण यहाँ तो मुझे सिर झुकाना ही पड़ेगा।

कारायण : देवि! मैं एक दिन में इस कोसल का उलट-पुलट देता, छत्र-चँमर लेकर हठात् विरुद्धक को सिंहासन पर बैठा देता—किंतु मन के बिगड़ने पर भी मल्लिका देवी का शासन मुझे सुमार्ग से न हटा सका, और आप देखेंगी कि शीघ्र ही कोसल के सिंहासन पर राजकुमार विरुद्धक बैठेंगे, परंतु आपकी मंत्रणा के प्रतिकूल।

(विरुद्धक और मल्लिका का प्रवेश)

शक्तिमती : आर्या मल्लिका का मैं अभिवादन करती हूँ।

कारायण : मैं नमस्कार करता हूँ।

(विरुद्धक माता का चरण छूता है)

मल्लिका : शांति मिले, विश्व शीतल हो। बहिन, क्या तुम अब भी राजकुमार को उत्तेजित करके उसे मनुष्यता से गिराने

की चेष्टा करोगी ? तुम जननी हो, तुम्हारा प्रसन्न मातृ-भाव क्या तुम्हें इसलिए उत्साहित करता है ? क्या क्रूर विरुद्धक को देखकर तुम्हारी अंतरात्मा लज्जित नहीं होती ?

शक्तिमती : वह मेरी भूल थी देवि ! क्षमा करना। वह बर्बरता का उद्रेक था—पाशव-वृत्ति की उत्तेजना थी।

मल्लिका : चंद्र-सूर्य, शीतल-उष्ण, क्रोध करुणा-द्वेष-स्नेह का द्वंद्व संसार का मनोहर दृश्य है। रानी ! स्त्री और पुरुष भी उसी विलक्षण नाटक के अभिनेता हैं। स्त्रियों का कर्त्तव्य है कि पाशव-वृत्ति वाले क्रूरकर्मा पुरुषों को कोमल और करुणाप्लुत करें, कठोर पौरुष के अनंतर उन्हें जिस शिक्षा की आवश्यकता है—उस स्नेह, शीतलता, सहनशीलता और सदाचार का पाठ उन्हें स्त्रियों से ही सीखना होगा। हमारा यह कर्त्तव्य है। व्यर्थ स्वतंत्रता और समानता का अहंकार करके उस अपने अधिकार से हमको वंचित न होना चाहिये। चलो, आज अपने स्वामी से क्षमा माँगो। सुना जाता है कि अजात बाजिरा का ब्याह होने वाला है, तुम भी उस उत्सव में अपने घर को सूना मत रक्खो।

शक्तिमती : आपकी आज्ञा शिरोधार्य है देवि !

कारायण : तो मैं भी आज्ञा चाहता हूँ; क्योंकि मुझे शीघ्र ही पहुँचना चाहिये, देखिए वैतालिकों की वीणा बजने लगी। संभवत: महाराज शीघ्र सिंहासन पर आया चाहते हैं।—(राजकुमार विरुद्धक से) राजकुमार, मैं आपसे भी क्षमा चाहता हूँ; क्योंकि आप जिस विद्रोह के लिए मुझे आज्ञा दे गये थे, मैं उसे करने में असमर्थ था—अपने राष्ट्र के विरुद्ध यदि आप अस्त्र ग्रहण न करते, तो संभवत मैं आपका अनुगामी हो जाता; क्योंकि मेरे हृदय में भी प्रतिहिंसा थी। किंतु वैसा न हो सका। उसमें मेरा अपराध नहीं।

विरुद्धक : उदार सेनापति, मैं हृदय मे तुम्हारी प्रशंसा करता हूँ और स्वयं तुमसे क्षमा माँगता हूँ।

कारायाण : मैं सेवक हूँ युवराज ! (जाता है)



[कोसल की राजसभा/वर-वधू के वेश में अजातशत्रु और बाजिरा तथा प्रसेनजित्, शक्तिमती, मल्लिका, विरुद्धक, वासवी और कारायण का प्रवेश]

मल्लिका : बधाई है महाराज ! यह शुभ संबंध आनंदमय हो !

प्रसेनजित् : देवि ! आपकी असीम अनुकम्पा है, जो मुझ—जैसे अधम व्यक्ति पर इतना स्नेह ! पतितपावनी, तुम धन्य हो !

मल्लिका : किंतु महाराज ! मेरी एक प्रार्थना है !

प्रसेनजित् : आपकी आज्ञा शिरोधार्य है। भगवती !

मल्लिका : आपकी इस पत्नी—परित्यक्ता शक्तिमती का क्या दोष है ? इस शुभ अवसर पर यह विवाद उठाना यद्यपि ठीक नहीं है तो भी····।

प्रसेनजित् : इसका प्रमाण तो वह स्वयं है ! उसने क्या-क्या नहीं किया—यह क्या किसी से छिपा है ?

मल्लिका : किंतु इसके मूल कारण तो महाराज ही हैं। यह तो अनुकरण करती रही—यथा राजा तथा प्रजा—जन्म लेना तो इसके अधिकार में नहीं था, फिर आप इस अबला पर क्यों ऐसा दण्ड-विधान करते हैं ?

प्रसेनजित् : मैं इसका क्या उत्तर दूँ देवि !

शक्तिमती : वह मेरा ही अपराध था आर्यपुत्र ! क्या उसके लिए क्षमा नहीं मिलेगी—मैं अपने कृत्यों पर पश्चात्ताप करती हूँ। अब मेरी सेवा मुझे मिले, उसमें मैं वंचित न होऊँ, यही मेरी प्रार्थना है।

(प्रसेनजित् मल्लिका का मुँह देखता है)

मल्लिका : क्षमा करना ही होगा महाराज ! और उसका बोझ मेरे सिर पर होगा। मुझे विश्वास है कि यह प्रार्थना निष्फल न होगी।

प्रसेनजित् : मैं उसे कैसे अस्वीकार कर सकता हूँ।

(शक्तिमती का हाथ पकड़कर उठाता है)

मल्लिका : मैं कृतज्ञ हुई सम्राट् ! क्षमा से बढ़कर दण्ड नहीं है, और आपकी राष्ट्रनीति इसी का अवलंबन करे, मैं यही आशीर्वाद देती हूँ। किंतु एक बात और भी है।

प्रसेनजित् : वह क्या ?

मल्लिका : मैं आज अपना सब बदला चुकाना चाहती हूँ; मेरा भी कुछ अभियोग है।

प्रसेनजित् : वह बड़ा भयानक है! देवि, उसे तो आप क्षमाकर चुकी हैं; अब ?

मल्लिका : तब आप यह स्वीकार करते हैं कि भयानक अपराध भी क्षमा कराने का साहस मनुष्य को होता है ?

प्रसेतजित् : विपन्न की यही आशा है। तब भी·······।

मल्लिका : तब भी ऐसा अपराध क्षमा किया जाता है, क्यों सम्राट् ?

प्रसेनजित् : मैं क्या कहूँ ? इसका उदारण तो मैं स्वयं हूँ!

मल्लिका : तब यह राजकुमार विरुद्धक भी क्षमा का अधिकारी है।

प्रसेनजित् : किंतु वह राष्ट्र का द्रोही है, क्यों धर्माधिकारी, उसका क्या दण्ड है ?

धर्माधिकारी : (सिर नीचा कर) महाराज!

मल्लिका : राजन्, विद्रोही बनाने के कारण भी आप ही हैं। बनाने पर विरुद्धक राष्ट्र का एक सच्चा शुभचिंतक हो सकता था। और इंससे क्या—मैं तो स्वीकार करा चुकी हूँ कि भयानक अपराध भी मार्जनीय होते हैं।

प्रसेनजित् : तब विरुद्धक को क्षमा किया जाय।

विरुद्धक : पिता, मेरा अपराध कौन क्षमा करेगा? पितृद्रोही को कौन ठिकाना देगा ? मेरी आँखें लज्जा से ऊपर नहीं उठतीं। मुझे राज्य नहीं चाहिये; चाहिये केवल आपकी क्षमा। पृथ्वी के साक्षात् देवता! मेरे पिता! मुझ अपराधी पुत्र को क्षमा कीजिये। (चरण पकड़ता है)

प्रसेनजित् : धर्माधिकारी! पिता का हृदय इतना सदय होता है कि नियम उसे क्रूर नहीं बना सकता। मेरा पुत्र मुझसे क्षमा-भिक्षा चाहता है, धर्मशास्त्र के उस पत्र को उलट दो, मैं एक बार अवश्य क्षमा कर दूँगा उसे न करने से मैं पिता नहीं रह सकता, मैं जीवित नहीं रह सकता।

धर्माधिकारी : किंतु महाराज ! व्यवस्था का भी कुछ मान रखना चाहिए।

प्रसेनजित् : यह मेरा त्याज्य पुत्र है। किंतु अपराध का मृत्युदण्ड ! नहीं-नहीं वह किसी राक्षस पिता का काम है। वत्स विरुद्धक ! उठो, मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ।

(विरुद्धक को उठाता है/गौतम का प्रवेश)

सब : भगवान् के चरणों में प्रणाम।

गौतम : विनय और शील की रक्षा करने में सब दत्तचित्त रहें, जिससे प्रजा का कल्याण हो—करुणा की विजय हो। आज मुझे संतोष हुआ, कोसल-नरेश ! तुमने अपराधी को क्षमा करना सीख लिया, यह राष्ट्र के लिए कल्याण की बात हुई। फिर भी तुम इसे त्याज्य पुत्र क्यों कह रहे हो ?

प्रसेनजित् : महाराज, यह दासीपुत्र है, सिंहासन का अधिकारी नहीं हो सकता।

गौतम : यह दंभ तुम्हारा प्राचीन संस्कार है। क्यों राजन् ! क्या दास, दासी, मनुष्य नहीं हैं ? क्या कई पीढ़ी ऊपर तक तुम प्रमाण दे सकते हो कि सभी राजकुमारियों की संतान ही इस सिंहासन पर बैठी है या प्रतिज्ञा करोगे कि आने वाली कई पीढ़ी तक दासी पुत्र इस पर न बैठने पावेंगे ? यह छोटे-बड़े का भेद क्या अभी इस संकीर्ण हृदय में इस तरह घुसा है कि निकल नहीं सकता ? क्या जीवन की वर्तमान स्थिति देखकर प्राचीन अंधविश्वासों को, जो न जाने किस कारण होते आये हैं, तुम बदलने के लिए प्रस्तुत नहीं हो ? क्या इस क्षणिक भव में तुम अपनी स्वतंत्र सत्ता अनंत काल तक बनाये रक्खोगे ? और भी, क्या उस आर्यपद्धति को तुम भूल गये कि पिता से पुत्र की गणना होती है ? राजन्, सावधान हो, इस अपनी सुयोग्य शक्ति को स्वयं कुंठित न बनाओ। यद्यपि इसने कपिलवस्तु में निरीह प्राणियों का वध करके बड़ा अत्याचार किया है और कारणवश क्रूरता भी यह करने लगा था, किंतु अब इसका हृदय, देवी मल्लिका की कृपा से, शुद्ध हो गया है ! इसे तुम युवराज बनाओ।

सब : धन्य हैं ! धन्य हैं !!

प्रसेनजित् : तब जैसी आज्ञा—इस व्यवस्था का कौन अतिक्रमण कर सकता है, और यह मेरी प्रसन्नता का कारण भी होगा। प्रभु, आपकी कृपा से मैं आज सर्वसंपन्न हुआ। और क्या आज्ञा है ?

गौतम : कुछ नहीं। तुम लोग कर्त्तव्य के लिए सत्ता के अधिकारी बनाये गये हो, उसका दुरुपयोग न करो। भू-मण्डल पर स्नेह का, करुणा का, क्षमा का शासन फैलाओ। प्राणिमात्र में सहानुभूति को विस्तृत करो। इन क्षुद्र विप्लवों से चौंककर अपने कर्म-पथ से च्युत न हो जाओ।

प्रसेनजित् : जो आज्ञा, वही होगा।

(अजातशत्रु उठकर विरुद्धक को गले लगता है)

अजातशत्रु : भाई विरुद्धक, मैं तुमसे ईर्ष्या कर रहा हूँ।

विरुद्धक : और मैं यह दिन शीघ्र देखूँगा कि तुम भी इसी प्रकार अपने पिता से क्षमा किये गये।

अजातशत्रु : तुम्हारी वाणी सत्य हो।

बाजिरा : भाई विरुद्धक ! मुझे क्या तुम भूल गये ? क्या मेरा कोई अपराध है, जो मुझसे नहीं बोलते थे ?

विरुद्धक : नहीं-नहीं, मैं तुमसे लज्जित हूँ। मैं तुम्हें सदैव द्वेष की दृष्टि से देखा करता था, उसके लिए तुम मुझे क्षमा करो।

बाजिरा : नहीं भाई ! यही तुम्हारा अत्याचार है।

(सब जाते हैं)

वासवी : (स्वगत) अहा ! जो हृदय विकसित होने के लिए हैं, जो मुख हँसकर स्नेह-सहित बातें करने के लिए है, उसे लोग कैसा बिगाड़ लेते हैं ! भाई प्रसेन, तुम अपने जीवन-भर में इतने प्रसन्न कभी न हुए होगे, जितने आज। कुटुम्ब के प्राणियों में स्नेह का प्रचार करके मानव इतना सुखी होता है, यह आज ही मालूम हुआ होगा। भगवान् ! क्या कभी वह भी दिन आवेगा जब विश्व-भर में एक कुटुम्ब स्थापित हो जायगा और मानव-मात्र स्नेह से अपनी गृहस्थी सम्हालेंगे ! (जाती है)



[पथ में वार्तालाप करते हुए दो नागरिक]

पहला : किसने शक्ति का ऐसा परिचय दिया है ! सहनशीलता का ऐसा प्रत्यक्ष प्रमाण—ओह !

दूसरा : देवदत्त का शोचनीय परिणाम देखकर मुझे तो आश्चर्य हो गया। जो एक स्वतंत्र संघ स्थापित करना चाहता था, उसकी यह दशा....।

पहला : जब भगवान् से भिक्षुओं ने कहा कि देवदत्त आपका प्राण लेने आ रहा है, उसे रोकना चाहिये ....।

दूसरा : तब, तब ?

पपला : तब उन्होंने केवल यही कहा कि घबराओ नहीं, देवदत्त मेरा कुछ अनिष्ट नहीं कर सकता। वह स्वयं मेरे पास नहीं आ सकता, उसमें इतनी शक्ति नहीं, क्योंकि उसमें द्वेष है।

दूसरा : फिर क्या हुआ ?

पहला : यही कि देवदत्त समीप आने पर प्यास के कारण उस सवोवर में जल पीने उतरा। कहा नहीं जा सकता कि उसे क्या हुआ—कोई ग्राह पकड़ ले गया कि उसने लज्जा से डूब कर आत्महत्या कर ली। वह फिर न दिखाई पड़ा।

दूसरा : आश्चर्य ! गौतम की अमोध शक्ति है। भाई, इतना त्याग तो आज तक देखा नहीं गया। केवल पर-दुःख-कातरता ने किस प्राणी से राज्य छुड़वाया है ! अहा, वह शान्त मुख-मण्डल, स्निग्ध, गम्भीर दृष्टि, किसको नहीं आकर्षित करती। कैसा विलक्षण प्रभाव है !

पहला : तभी तो बड़े-बड़े सम्राट् लोग विनत होकर उनकी आज्ञा का पालन करते हैं। देखो, यह भी कभी हो सकता था कि राजकुमार विरुद्धक पुनः युवराज बनाये जाते ? भगवान् ने समझाकर महाराज को ठीक कर दिया—और वे आनन्द से युवराज बना दिए गये।

दूसरा : हाँ जी, चलो, आज तो श्रावस्ती भर में महोत्सव है, हम लोग भी घूम-घूम कर आनंद लें।

पहला : श्रावस्ती पर से आतंक-का मेघ टल गया, अब तो आनंद-ही-आनंद है। इधर राजकुमारी का ब्याह भी मगधराज से हो गया। अब युद्ध-विग्रह तो कुछ दिनों के लिए शांत हुए। चलो हम लोग भी महोत्सव में सम्मिलित हों।

(दोनों जाते हैं, दूसरी ओर से वसंतक का प्रवेश)

वसंतक : फटी हुई बाँसुरी भी कहीं बजती है! एक कहावत है कि 'रहे मोची-के-मोची।' यह सब ग्रहों की गड़बड़ी है, ये एक बार ही इतना बड़ा कांड उपस्थित कर देते हैं! कहाँ साधारण ग्राम्य-बाला—हो गयी थी राजरानी! मैं देख आया—वही मागंधी ही तो है। अब आम की बारी लेकर बेचा करती है और लड़कों के ढेले खाया करती है। ब्रह्मा भी कभी भोजन करने के पहले मेरी ही तरह भाँग पी लेते होंगे, तभी तो ऐसा उलटफेर…एं, किंतु, परंतु, तथापि वही कहावत 'पुनर्मूषिको भव'! एक चूहे को किसी ऋषि ने दया करके व्याघ्र बना दिया, वह उन्हीं पर गुर्राने लगा। जब झपटने चला तो चट से बाबा जी बोले—'पुनर्मूषिको भव'—जा बच्चा, फिर चूहा बन जा। महादेवी वासवदत्ता को यह समाचार चलकर; सुनाऊँगा। अरे उसी के फेर में मुझे देर हो गयी। महाराज ने वैवाहिक उपहार भेजे थे, सो अब तो मैं पिछड़ गया। लड्डू तो मिलेंगे। अजी बासी होगा तो क्या—मिलेंगे तो। ओह, नगर में तो आलोक-माला दिखाई देती है! संभवत: वैवाहिक महोत्सव का अभी अंत नहीं हुआ! तो चलूँ। (जाता है)



[आम्र कानन में आम्रपाली मागंधी]

मागंधी : (आप-ही-आप)—वाह री नियति ! कैसे-कैसे दृश्य देखने में आये—कभी बैलों को चारा देते-देते हाथ नहीं थकते थे, कभी अपने हाथ से जल का पात्र तक उठा कर पीने से

संकोच होता था, कभी शील का बोझ एक पैर भी महल के बाहर चलने में रोकता था और कभी निर्लज्ज गणिका का आमोद मनोनीत हुआ ! इस बुद्धिमता का क्या ठिकाना है ! वास्तविक रूप के परिवर्तन की इच्छा मुझे इतनी विषमता में ले आयी। अपनी परिस्थिति को संयत न रखकर व्यर्थ महत्त्व का ढोंग मेरे हृदय ने किया, काल्पनिक सुख-लिप्सा हो में पड़ी—उसी का यह परिणाम है। स्त्री-सुलभ एक स्निग्धता, सरलता की मात्रा कम हो जाने से जीवन में कैसे बनावटी भाव आ गये ! जो अब केवल एक संकोचदायिनी स्मृति के रूप में अवशिष्ट रह गये हैं। (गाती है)

स्वजन दीखता न विश्व में अब, न बात मन में समाय कोई।
पड़ी अकेली विकल रो रही, न दुःख में हैं सहाय कोई।।

पलट गए दिन सनेह वाले, नहीं नशा, अब रही न गर्मी।
न नींद सुख की, न रगलियाँ, न सेज उजला बिछाय सोई।।

बनी न कुछ इस चपल चित्त की, बिखर गया झूठ गर्व जो था।
असीम चिंता चिता बनी है, विटप कँटीले लगाय रोई।।

क्षणिक वेदना अनंत सुख बस, समझ लिया शून्य में बसेरा।
पवन पकड़कर पता बताने न लौट आया न जाय कोई।।

(गौतम का प्रवेश/घुटने टेककर हाथ जोड़ती है/गौतम उसके सिर पर हाथ रखते हैं)

गौतम : करुणे, तेरी जय हो !

मागंधी : (आँख खोल कर और पैर पकड़ कर)—प्रभु, आ गये ! इस प्यासे हृदय की तृष्णा मिटाने को अमृत-स्रोत ने अपनी गति परिवर्तित की—इस मरु-देश में पदार्पण किया !

गौतम : मागंधी, तुम्हें शांति मिलेगी। जब तक तुम्हारा हृदय उस विशृंखलता में था, तभी तक यह विडंबना थी।

मागंधी : प्रभु ! मैं अभागिनी नारी, केवल उस अवज्ञा की चोट से बहुत दिन भटकती रही। मुझे रूप का गर्व बहुत ऊँचे चढ़ा ले गया था, और अब उसी ने नीचे पटका।

गौतम : क्षणिक विश्व का यह कौतुक है देवि ! अब तुम अग्नि से तपे हुए हेम की तरह शुद्ध हो गयी हो। विश्व के कल्याण में अग्रसर हो। असंख्य दुःखी जीवों को हमारी सेवा की आवश्यकता है। इस दुःख-समुद्र में कूद पड़ो। यदि एक भी रोते हुए हृदय को तुमने हँसा दिया, तो सहस्रों स्वर्ग तुम्हारे अंतर में विकसित होंगे। फिर तुमको पर-दुःख कातरता में ही आनंद मिलेगा। विश्वमैत्री हो जायगी— विश्व-भर अपना कुटुम्ब दिखाई पड़ेगा। उठो, असंख्य आहें तुम्हारे उद्योग से अट्टहास में परिणत हो सकती है।

मागंधी : अंत में मेरी विजय हुई नाथ ! मैंने अपने जीवन के प्रथम वेग में ही आपको पाने का प्रयास किया था। किंतु वह समय ठीक भी नहीं था। आज मैं अपने स्वामी को, अपने नाथ को अपनाकर धन्य हो रही हूं।

गौतम : मागंधी ! अब उन अतीत के विकारों को स्मरण करती है निर्मल हो जा !

मागंधी : प्रभु ! मैं नारी हूं, जीवन-भर असफल होती आयी हूँ। मुझे उस विचार के सुख से न वंचित कीजिये। नाथ ! जन्मभर की पराजय में भी आज मेरी विजय हुई। पतित-पावन ! यह उद्धार आपके लिए भी महत्त्व देनेवाला है और मुझे तो सब कुछ।

गौतम : अच्छा आम्रपाली ! कुछ खिलाओगी ?

मागंधी : (आम की टोकरी लाकर रखती हुई)—प्रभु ! अब इस आम्रकानन की मुझे आवश्यकता नहीं, यह संघ को समर्पित है। (संघ का प्रवेश)

संघ : जय हो, अमिताभ की जय हो ! बुद्धं शरणं—

मागंधी : गच्छामि।

गौतम : संघं शरणं गच्छामि।

(प्रस्थान)



[प्रकोष्ठ मे पद्मावती और छलना]

छलना : बेटी ! तुम बड़ी हो, मैं बुद्धि में तुमसे छोटी हूँ। मैंने तुम्हारा अनादर करके तुम्हें भी दुःख दिया और भ्रांत पथ पर चल कर स्वयं भी दुःखी हुई।

पद्मावती : मां, मुझे लज्जित न करो ! तुम क्या मेरी माँ नहीं हो ! माँ, भाभी के बच्चा हुआ है—अहा कैसा सुंदर नन्हा-सा बच्चा है!

छलना : पद्मा ! तुम और अजात सहोदर भाई-बहन हो, मैं तो सचमुच एक बवंडर हूँ। बहिन वासनी क्या मेरा अपराध क्षमा कर देंगी ? **(वासनी का प्रवेश)**

छलना : (पैर पर गिरकर)—कुणीक की तुम्हीं वास्तव में जननी हो, मुझे तो बोझ ढोना था।

पद्मावती : माँ ! छोटी माँ पूछती हैं, क्या मेरा अपराध क्षम्य है ?

वासनी : (मुस्करा कर)—कभी नहीं, इसने कुणीक को उत्पन्न करके मुझे बड़ा सुख दिया, जिसका इस छोटे-से हृदय से मैं इसे क्षमा नहीं करूँगी।

छलना : (हँसकर)—तब तो बहिन, मैं भी तुमसे लड़ाई करूँगी, क्योंकि मेरा दुःख हरण करके तुमने मुझे खोखली कर दिया है; हृदय हल्का होकर बेकाम हो गया है। अरे, सपत्नी का काम तो तुम्हीं ने कर दिखाया। पति को तो बस में किया ही था, मेरे पुत्र को भी गोद में ले लिया। मैं····।

वासवी : छलना ! तू नहीं जानती, मुझे एक बच्चे की आवश्यकता थी इसलिए तुझे नौकर रख लिया था, अब तो तेरा काम नहीं है।

छलना : बहिन, इतनी कठोर न हो जाओ।

वासवी : (हँसती हुई)—अच्छा ! जा मैंने तुझे अपने बच्चे की धात्री बना दिया। देख, अब अपना काम ठीक से करना, नहीं तो फिर...।

छलना : (हाथ जोड़कर)—अच्छा स्वामिनी !

पद्मावती : क्यों माँ, अजात तो यहां अभी नहीं आया ! वह क्या छोटी माँ के पास नहीं आवेगा ?

वासनी : पद्मा ! जब उसे पुत्र हुआ, तब उससे कैसे रहा जाता। वह सीधे श्रावस्ती से महाराज के मंदिर में गया है। संतान उत्पन्न होने पर अब उसे पिता के स्नेह का मोल समझपड़ा है।

छलना : बेटी पद्मा ! चल। इसी से कहते हैं कि काठ की सौत भी बुरी होती है, देखो निर्दयता, अजात को यहाँ न आने दिया।

वासवी : चल, चल, तुझे तेरा पति भी दिलवा दूँ और बच्चा भी। यहाँ बैठकर मुझसे लड़ मत कंगालिन !

(सब हँसती हुई जाती हैं)



[महाराज बिम्बिसार का कुटीर]

(बिम्बिसार लेटे हुए हैं)

(नेपथ्य से गान)

चल बसंत बाला अंचल से किस घातक सौरभ से मस्त
आती मलयानिल की लहरें जब दिनकर होता है अस्त ।

मधुकर से कर संधि, विचर कर उषा नदी के तट उस पार,
चूसा रस पत्तों-पत्तों से फूलों का दे लोभ अपार।
लगे रहे जो अभी डाल से बने आवरण फूलों के,
अवयव थे शृंगार रहे जो वनबाला के झूलों के।
आशा देकर गले लगाया रुके न वे फिर रोके से,
उन्हें हिलाया बहकाया भी किधर उठाया झोंके से।
कुम्हलाये, सूखे, ऐंठे फिर गिरे अलग हो वृंतों से,
वे निरीह मर्माहत होकर कुसुमाकर के कुन्तों से।
नवपल्लव का सृजन! तुच्छ है किया वात से वध जब क्रूर,
कौन फूल सा हँसता देखे! वे अतीत से भी जब दूर।
लिखा हुआ उनकी नस-नस में इस निर्दयता का इतिहास,
तू अब 'आह' बनी घूमेगी उनके अवशेषों के पास।

बिम्बिसार : (उठ कर आप-ही-आप)—संध्या का समीर ऐसा चल रहा है—जैसे दिन भर का तपा हुआ उद्विग्न संसार एक शीतल निश्वास छोड़ कर अपने प्राण धारण कर रहा हो। प्रकृति की शांतिमयी मूर्त्ति निश्चल होकर भी मधुर झोंके से हिल जाती है। मनुष्य-हृदय भी एक रहस्य है, एक पहेली है। जिस पर क्रोध से भैरव-हुंकार करता है, उसी पर स्नेह का अभिषेक करने के लिए प्रस्तुत रहता है। उन्माद! और क्या? क्या मनुष्य इस पागल विश्व के शासन से अलग होकर कभी निश्चेष्टता नहीं ग्रहण कर सकता—क्या? हाँय रे मानव! इतनी दुरभिलाषायें बिजली की तरह तू अपने हृदय में क्यों आलोकित करता है! क्या निर्मल-ज्योति तारागण की मधुर किरणों के सदृश सद्वृत्तियों का विकास तुझे नहीं रुचता! भयानक भावुकता और उद्वेगजनक अंत: करण लेकर तू क्यों व्यग्र हो रहा है? जीवन की शांतिमयी सच्ची परिस्थिति को छोड़कर व्यर्थ के अभिमान में तू कब तक पड़ा रहेगा? यदि मैं सम्राट न होकर किसी विनम्र लता के कोमल किसलयों के झुरमुट में एक अधखिला फूल होता और संसार की दृष्टि मुझ पर न पड़ती—पवन के किसी लहर को सुरभित करके धीरे-से उस थाले में चू पड़ता—तो इतना भीषण चीत्कार इस

विश्व में न मचता। उस अस्तित्व को अनस्तित्व के साथ मिलाकर कितना सुखी होता! भगवान्—असंख्य ठोकरें खाकर लुढ़कते हुए जड़ ग्रहपिंडों से भी तो इस चेतन मानव की बुरी गति है। धक्के-पर-धक्के खाकर भी यह निर्लज्ज, सभा से नहीं निकलना चाहता। कैसी विचित्रता है। अहा! वासवी भी नहीं हैं। कब तक आवेंगी।

जीवक : (प्रवेश करके)—सम्राट।

बिम्बिसार : चुप! यदि मेरा नाम न जानते हो, तो मनुष्य कह कर पुकारो। वह भयानक संबोधन मुझे न चाहिये!

जीवक : कई रथ द्वार पर आये हैं और राजकुमार कुणीक भी आ रहे हैं।

बिम्बिसार : कुणीक—कौन! मेरा पुत्र या मगध का सम्राट—अजातशत्रु?

अजातशत्रु : (प्रवेश करके)—पिता, आपका पुत्र यह कुणीक सेवा में प्रस्तुत है। (पैर पकड़ता है)

बिम्बिसार : नहीं, नहीं, मगधराज अजातशत्रु को सिंहासन की मर्यादा नहीं भंग करनी चाहिये। आह मेरे दुर्बल-चरण—ओह, छोड़ दो।

अजातशत्रु : नहीं पिता, पुत्र का यही सिंहासन है। आपने सोने का झूठा सिंहासन देकर मुझे इस सत्य-अधिकार से वंचित किया। अबाध्य पुत्र को भी कौन क्षमा कर सकता है?

बिम्बिसार : पिता! किंतु, वह पुत्र को क्षमा करता है—सम्राट को क्षमा करने का अधिकार पिता को कहाँ?

अजातशत्रु : नहीं पिता, मुझे भ्रम हो गया था। मुझे अच्छी शिक्षा नहीं मिली थी। मिला था केवल जंगलीपन की स्वतंत्रता का अभिमान—अपने को विश्व-भर से स्वतंत्र जीव समझने का झूठा आत्म-सम्मान।

बिम्बिसार : वह भी तो तुम्हारे गुरुजन की ही दी हुई शिक्षा थी। तुम्हारी माँ थी—राजमाता!

अजातशत्रु : वह केवल मेरी माँ थी—एक संपूर्ण अंग का आधा भाग, उसमें पिता की छाया न थी—पिता! इसलिए आधी शिक्षा अपूर्ण ही होगी।

छलना : (प्रवेश करके चरण पकड़ती है)—नाथ! मुझे निश्चय हुआ कि वह मेरी उद्दंडता थी। वह मेरी कूट-चातुरी थी, दंभ का प्रकोप था। नारी-जीवन के स्वर्ग से मैं वंचित कर दी गयी। ईंट-पत्थर के महल रूपी बंदीगृह में मैं अपने को धन्य समझने लगी थी। दंडनायक, मेरे शासक! क्यों न उसी समय शील और विनय के नियम-भंग करने के अपराध में मुझे आपने दंड दिया! क्षमा करके, सहन करके, जो आपने इस परिणाम की यंत्रणा के गर्त्त में मुझे डाल दिया है वह मैं भोग चुकी। अब उबारिये।

बिम्बिसार : छलना, दंड देना मेरी सामर्थ्य के बाहर था। अब देखूँ कि क्षमा करना भी मेरी सामर्थ्य में है कि नहीं!

वासवी : (प्रवेश करके) आर्य पुत्र! अब मैंने इसको दंड दे दिया है, मातृत्व-पद से च्युत की गयी है, अब इसको आपके पौत्र की धात्री का पद मिला है। एक राजमाता को इतना बड़ा दंड कम नहीं है; अब आपको क्षमा करना ही होगा।

बिम्बिसार : वासवी! तुम मानवी हो कि देवी?

वासवी : बता दूँ! मैं मगध के सम्राट की राजमहिषी हूं। और, यह छलना मगध के राजपौत्र की धाई है, और यह कुणीक मेरा बच्चा इस मगध का युवराज है और आपको भी···।

बिम्बिसार : मैं अच्छी तरह अपने को जानता हूं वासवी!

वासवी : क्या?

बिम्बिसार : कि मैं मनुष्य हूँ और इन मायाविनी स्त्रियों के हाथ का खिलौना हूँ।

वासवी : तब तो महाराज, मैं जैसा कहती हूँ वैसा ही कीजिये; नहीं तो आपको लेकर मैं नहीं खेलूंगी।

बिम्बिसार : तो तुम्हारी विजय हुई वासवी! क्यों अजात! पुत्र होने पर पिता के स्नेह का गौरव तुम्हें विदित हुआ—कैसी उलटी बात हुई!

(कुणीक लज्जित होकर सिर झुका लेता है)

पद्मावती : (प्रवेश करके)—पिताजी, मुझे बहुत दिनों से आपने कुछ नहीं दिया है, पौत्र होने के उपलक्ष में तो मुझे कुछ अभी दीजिये, नहीं तो मैं उपद्रव मचाकर इस कुटी को खोद डालूँगी !

बिम्बिसार : बेटी पद्मा ! अहा तू भी आ गयी !

पद्मावती : हाँ पिताजी ! बहू भी आ गयी है। क्या मैं यहीं ले आऊँ ?

वासवी : चल पगली ! मेरी सोने-सी बहू इस तरह क्या जहाँ-तहाँ जायगी—जिसे देखना हो, वहीं चले !

बिम्बिसार : तुम सबने तो आकर मुझे आश्चर्य में डाल दिया। प्रसन्नता से मेरा जी घबरा उठा है।

पद्मावती : तो फिर मुझे पुरस्कार दीजिये।

बिम्बिसार : क्या लोगी ?

पद्मावती : पहिले छोटी माँ को, भइया को क्षमा कर दीजिये; क्योंकि इनकी याचना पहले की है; फिर ···।

बिम्बिसार : अच्छा री पद्मा ! देखूँगा तेरी दुष्टता। उठो वत्स अजात ! जो पिता है वह क्या कभी भी पुत्र को क्षमा—माँगने पर भी नहीं देगा। तुम्हारे लिए यह कोष सदैव खुला है। उठो छलना, तुम भी। (अजातशत्रु को गले लगाता है)

पद्मावती : तब मेरी बारी !

बिम्बिसार : हाँ कह भी····।

पद्मावती : बस चल कर मगध के नवीन राजकुमार को एक स्नेह-चुम्बन आशीर्वाद के साथ दीजिये।

बिम्बिसार : तो फिर शीघ्र चलो—(उठकर गिर पड़ता है) ओह ! इतना सुख एक साथ मैं सहन न कर सकूँगा ! तुम सब बहुत विलंब करके आये !

(काँपता है/गौतम का प्रवेश, अभय का हाथ उठाते हैं)

(आलोक सहित यवनिका पतन)

☐

[redacted]

हिन्दी की श्रेष्ठ एवं साहित्यिक पुस्तकों को आकर्षक रूप-सज्जा में प्रस्तुत करने वाला एक मात्र संस्थान है।

साहित्य-प्रेमी यदि ऐसे साहित्य की नियमित जानकारी प्राप्त करना चाहते हैं तो कृपया हमें लिखें।



बाबू जयशंकर प्रसाद का साहित्य

काव्य

कामायनी
झरना
आँसू
लहर

उपन्यास

कंकाल
तितली
ईरावती

कथा साहित्य

छाया
प्रतिध्वनि
आकाश-दीप
आँधी
इन्द्रजाल
चित्राधार

नाट्य साहित्य

उर्वशी चम्पू
सज्जन
प्रायश्चित
कल्याणी परिचय
करुणालय
राज्यश्री
विशाख
अजातशत्रु
जनमेजय का नाग-यज्ञ
कामना
स्कन्दगुप्त विक्रमादित्य
एक घूँट
चन्द्रगुप्त
ध्रुवस्वामिनी
अग्निमित्र